छंति ।
ता ॥
(गाथा १५४)

चणिरोहो ।
तो ॥
(गाथा १६६)

णं ।
व्वं ॥
(गाथा ३४)

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ॥
(गाथा ७३)

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्व मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥
(गाथा २०७)

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥
(गाथा ३८)

# प्रस्तावना

'मोक्षमार्ग-प्रकाश' के कर्ता पंडित प्रवर टोडरमलजी कहते हैं—"पहिलें द्रव्यानुयोग (अध्यात्म-शास्त्र) के अनुसार श्रद्धान करि सम्यग्दृष्टि होय, पीछे चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय। ऐसे मुख्यपनें तौ नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग (अध्यात्म-शास्त्र) कार्यकारी है। गौणपनें जाकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होनी न जानिये, ताकौं पहिलें कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिये है। यातैं ऊंची दशावारेनकौं अध्यात्म-उपदेश अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचली दशावारेनकौं तहाँतै पराङ्मुख होना योग्य नाही।" इसके मानी ये हुए कि जिन्हें आत्म-कल्याण करना है उन्हें सबसे पहले अध्यात्म-ग्रन्थ पढने चाहिये; और मोक्षमार्गकी तरफ जिनका झुकाव नही, रुचि नही या मोक्षमार्गकी दिशामे जो द्विविधाग्रस्त हैं, वे कमसे कम ससार-मार्गमे ही उन्नतिशील बननेके लिए आत्म-ज्ञानके पहले ही व्रतादि धारण कर सुखी बनें। कमसे कम, मोक्ष न सही तो, इससे वे घोर दुखोंसे तो बचे रहेंगे, और उनके लिए यही 'भागते भूतकी लगोटी' हाथ पड जायगी। किन्तु यह निश्चित हैं कि "जो झूठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्मशास्त्रका बाँचना-सुनना निषेधिये, तौ मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहाँ (अध्यात्म-शास्त्र या द्रव्यानुयोगमें) ही है, ताका निषेध कियें मोक्षमार्गका निषेध होय।" ये मोक्षमार्ग प्रकाशके शब्द हैं। पाठकोंको इनपर गहरा विचार करना चाहिये।

श्रीमद् आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामीने "मोक्षपाहुड" में कहा है—

"अज्जवि तिरयण-सुद्धा अप्पा झाएवि लहद दंदत्तं;
लयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ विव्वुदिं जंति।"

अर्थात्—आज भी रत्नत्रयसे शुद्ध जीव अपने आत्माका ध्यानकर इन्द्र या लौकान्तिक देव होकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर सकता है। और यह निश्चित है कि आत्माका ध्यान ? सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र ( रत्नत्रय ) के बिना नहीं हो सकता, और आज एकमात्र और सुदुर्लभ अधिगमज सम्यक्त्वकी कदाचित् किसीको प्राप्ति हो भी, तो वह अध्यात्म-शास्त्र या अध्यात्म-उपदेशके सहारे ही हो सकती है। लिहाजा, इसकी उपयोगिता स्वत सिद्ध है। फिर भी जो इसका विरोध करते या इस महाप्रकाशसे भयभीत होते हैं, उनके लिए 'मोक्षमार्गप्रकाश' के इन शब्दोंके सिवा कि "सो तौ जिनमार्गका द्वेषी होना है" और हम क्या कर सकते हैं ?

आज, प्रत्येक सत्य-धर्मावलम्बी मानवात्मको मालूम होना चाहिए कि "पहले सम्यक्त्व होय, पीछैं व्रत होय। सो सम्यक्त्व स्व-परका श्रद्धान भये ही होय, अर सो श्रद्धान द्रव्यानुयोग ( अध्यात्म-शास्त्र ) का अभ्यास किये होय। तातै पहलैं द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धान करि सम्यग्दृष्टि होय, पीछै चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय।"
"जिनधर्मविषैं तौ याही परिपाटी है।"

इस दिशामे यह "आध्यात्मिक पत्रावलि" पाठकोंके लिए लाभदायक सिद्ध होगी, इसमें सन्देह नही। प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय वर्णीजीके विशद और अनुभूतिपूर्ण ज्ञानसे वही लाभ उठा सकता है जिसका ससार थोडा रह गया है या मोक्षमार्गकी ओर ही जिसका लक्ष्यबिन्दु है। यह कौन नही चाहता कि ससार-दुःखोंसे हमें जल्दसे जल्द छुटकारा मिल जाय और शान्तिसे सुखी बनें ? पर सिर्फ चाहनेसे ही अभीष्ट-सिद्धि नही होती, उसके लिए अभिरुचि और पुरुषार्थकी भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी चाह की।

हमें पूरी आशा है कि इस पुस्तकसे पाठकोंको आध्यात्मिक-ज्ञान-जन्य शान्तिका आभास मिलेगा, और उस आभास-बोधसे उनकी रुचि अध्यात्म-शास्त्रकी ओर बढेगी, जो मोक्ष-मार्गकी पहली सीढी है।

श्रीपार्श्व मोक्ष-सप्तमी<br>वीर नि० स० २४६७

धन्यकुमार जैन 'अन्तरात्मा'

## क्षमा-याचना

पुस्तक प्रकाशनके लिये प्रकाशन-सम्बन्धी प्रूफ-संशोधन आदिका ज्ञान होना आवश्यक है और वह हममेंसे किसीको नहीं, यही कारण है कि इस पुस्तकमें अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं, जिसका हमे खेद है। इसके लिये पाठकोंसे हम क्षमा-याचना करते हैं; और आशा करते हैं कि वे इसकी गलतिया अवश्य सुधार लें और तब पढे।

## धन्यवाद

इन ज्ञान-वर्द्धक और आत्म-स्वरूप-प्रदर्शक पत्रोंके प्रकाशनके लिये जिन जिज्ञासु सज्जनोने हमें आर्थिक सहायता दी है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं और इस कृपाके लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं। साथ ही विदुषी ब्र० चन्दाबाई (आरा) लाला त्रिलोकचन्द्रजी, बा० गोविन्दलालजी और श्रीयुत खेमचन्द्र भाई आदिने जो हमे पत्रोका सकलन भेजकर सहायता दी है, उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक

* श्री वीतरागाय नमः *

# आध्यात्मिक पत्रावलि

ईसरी

श्री प्रशममूर्त्ति तत्वज्ञान निधि चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका स्वास्थ्य (स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुसाम्) अच्छा होगा। लौकिक स्वास्थ्य तो पञ्चम कालमें धनिक समाजका प्राय विशेष सुविधाजनक नही रहता। इस समय की न जाने कैसी हवा है जो मोक्षमार्गको आंशिक प्राप्ति भी प्रायः जीवोंको दुर्लभ सी हो रही है। त्याग करने पर भी तात्विक शान्तिका आस्वाद नही आता, अत यही अनुमान होता है जो आभ्यन्तर त्याग नही। मैं अन्य प्राणियोकी कथा नहीं लिख रहा हू, स्वकीय परिणामोंका परिचय आपको करा रहा हूँ। जैनधर्म ता वह वस्तु है जो उसका आंशिक भाव यदि आत्मामे विकाश हो जावे तब आत्मा अनन्त ससारका उच्छेद कर जिनेश्वरके लघुनन्दन व्यपदेशका पात्र हो जावे। अत निरन्तर यही भावना रहती है, हे प्रभो! आपके दिव्य ज्ञानमें यही आया हो जो हमारी श्रद्धा आपके आगमके अनुकूल हो, यही हमें ससारसे पार करनेको नौका है।

जो व्यक्ति मोक्षमार्गका अधिकारी है जो श्रद्धाके अनुकूल ज्ञान और चारित्रका धारी हो। कभी २ चित्तमें उद्वेग आ जाता है कि अन्यत्र जाऊ, अन्तमें यही समाधान कर लेता हू कि अब पारसप्रभुका शरण छोडकर कहाँ जाऊ। जहा जावोगे परिणामोंकी सुधारणा तो स्वयं ही करना पड़ेगी। यह जीव आजतक निमित्त कारणोंकी प्रधानतासे ही आत्मतत्त्वके स्वाद से बंचित रहा। अत स्वकीय ओर दृष्टि देकर ही श्रेयोमार्ग की ओर जानेकी चेष्टा करना ही मुख्य कर्त्तव्य पथ है। श्री निर्मलकुमारकी मातासे इच्छाकार।

---

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया, समाचार जाने। आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा, हम भी यथा योग्य स्वाध्याय करते हैं, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है उसके अभावमें कुछ शान्तिका लाभ नहीं। व्यापार करनेका प्रयोजन आय है। आयके अभावमें कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बाई जी समागमको दोष देना तो अज्ञानता है। क्या करें, हमारा अतरग अभी उस तत्त्व तक नही पहुचा जहासे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठ के अर्थमें ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है। ज्ञानका फल विरति है, वह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हू, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है। विशेष क्या लिखू। श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवे-

चन शैली बहुत ही उत्तम है, आपको क्या लिखू क्योंकि आप की प्रवृत्ति प्रायः अलौकिक है। जहां तक बने अब उसे याता-यातको ह्रासे रक्षित रखिये। श्री चिरजीव निर्मलबाबूकी मां सानन्द होंगी। उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना। अब शेष जीवनमें जो उदासीनता है उसे ही वृद्धिरूप करनेमें उपयोगकी निर्मलता करैं यही कल्याणका मार्ग है, यह बाह्य समागम तो पुण्यका फल है और निर्मलता संसार बंधनको छेदन करनेमें तीक्ष्ण असि धारा है, वह जितनी निर्म्मल रहेगी उतनी ही शीघ्रतासे इसका निपात करैगी। हमने आपके समक्ष सराग जातिके अर्थ भ्रमणका विचार किया था, कोईने बात न पूछी और न कोई साधन जानेका मिला अत: आपकी सम्मति ही सर्वोपरि मानकर यहीं रहना ही निश्चित रक्खा है। शेष यहाके सर्व त्यागी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्रीआत्मानन्दजी चला गया। श्री सुरजमलजीका कार्य्य जैसा था वैसा ही है। "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इसीमें सन्तोष है। मैं तो निर्द्वन्द हू कुछ उसमे चेष्टा नही।

---

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी साहब योग्य इच्छाकार,

पर्वराज सानन्द पूर्ण हुआ, दशधाधर्म्मको यथा शक्ति सुना सुनाया, मनन किया। क्या आनन्द आया इसका अनुभव जिसको हुआ हो सो जाने, पूर्ण आनन्द तो इसका दिगम्बर दीक्षाके स्वामी श्री मुनिराज जानें, आंशिक स्वाद तो व्रतीके

भी आता है और इसकी जड अविरत अवस्थासे ही प्रारम्भ हो जाती है, जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती हुई अनन्त सुखात्मक फलका पात्र इस जीवको बना देती है। परमार्थ पथमे जिन जीवोंने यात्रा कर दी है उनकी दृष्टिमें ही यह तत्त्व आता है,क्योंकि इस पवित्र दशधाधर्मका सम्बन्ध उन्हीं पवित्र आत्माओसे है। व्यवहार रत तो उसकी गधको तरसते हैं। आडम्बर और है, वस्तु और है। नकलमें पारमार्थिक वस्तुकी आभा भी नही आती। हीरा की चमक काचमें नही। अत पारमार्थिक धर्म्म का व्यवहारसे लाभ होना परम दुर्लभ है, इसके त्यागसे ही उसका लाभ होगा। व्यवहार करना और बात है, और व्यवहार से धर्म मानना और बात है। व्यवहारकी उत्पत्ति मन वचन काय और कषायसे होती है और धर्मकी उत्पत्तिका मूल कारण केवल आत्म परिणति है। जहा विभाव परिणति है वहा उसमें धर्म मानना कहा तक सगत है? आपकी परिणति अति शान्त है, यही कल्याणका मार्ग है। बाबू निमलकुमारकी मा सानद होंगी, उनसे मेरा इच्छाकार कहना। और बाबूजीसे भी मेरी दर्शन विशुद्धि, किसी प्रकारका विकल्प न करें। जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे। अनहोनी कबहु नहिं होसी काहे होत अधीरा रे॥ विशेष क्या लिखू।

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका धर्म साधन अच्छे प्रकारसे होता होगा। अंतरगके

परिणामोंके ऊपर दृष्टिपात करनेसे आत्माकी विभाव परिणति का पता चलता हैं। आत्मापर पदार्थोकी लिप्सासे निरन्तर दु खी रहता है। आना जाना कुछ नही केवल कल्पनाओंके जाल मे फसा हुआ, अपनी सुधमे बेसुध हो रहा है। जाल भी अपनी ही कर्त्तव्यता का ही दोष है। एक जिनागम ही शरण है, यही आगम पचपरमेष्ठीका स्मरण कराके आत्माको विभावसे रक्षा करनेवाला है। श्रीचिरजीव निर्मलबाबूसे मेरा आशीर्वाद, उनकी निराकुलता जैन जनताको कल्याण करनेवाली है उनकी मा साहबको इच्छाकार कहना। मेरा विचार श्री राजगृहीकी बन्दनाका है और कार्तिक सुदी ३ को यहासे चलनेका था परतु यही पर बिहार उडीसा प्रातकी खडेलवाल सभाका कार्तिक सुदी ६।११ तक अधिवेशन है, इससे अगहनमे विचार है।

---

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका पत्र आया समाचार जाना। अब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वामी समंतभद्राचार्य्यने तो ऐसा लिखा है -

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक मेषपुंसां,
स्वार्थी न भोगः परिभगुरात्मा।
तृषोनु षंगान्न च ताप शान्ति,
रितिरेवमाख्यद्भगवान सुपार्श्वः ॥

जब तक आभ्यन्तर हीनता नहीं गई तभी तक यह बाह्य निमित्तोंकी मुख्यता है और आभ्यन्तर हीनता की न्यूनतामे

आत्मा ही समर्थ बलवान् कारण है। वही परम कर्त्तव्य इस पर्यायसे होना श्रेयस्कर है, लौकिक विभव तो प्राय· अनेक बार प्राप्ति किये परन्तु जिस विभव द्वारा आत्मा इस चतुर्गतिके फद से पृथक होकर सानद दशाका भोक्ता होता है वही नही पाया। इस पर्यायमे महती योग्यता उसकी है अत योग्य रीतिसे निरा-कुलता पूर्वक उसको प्राप्त करनेमे सावधान रहना ही तो हमे उचित है। मेरा श्री निर्मलकुमारकी मा से इच्छाकार कहना। और कहना कि अब समय चूकनेका नही। यह श्रद्धान बडी कठिनतासे पाया है। बुआजी आदिसे धर्म स्नेह कहना। स्थिर प्रकृतिका उदय तो उनके है, यह निरोगिता भी कोई पुण्योदयसे मिली है, उन्हें बाह्य ज्ञान न हो परन्तु अन्त निर्मलता है मैने अगहन सुदी १५ तक ईसरीसे ४ मील से बाहर न जाना यह नियम कर लिया है क्योंकि आपके शुभागमनके बाद कुछ चचलता बाहर जानेकी हो गई थी, चचलताका अन्तरग कारण कषाय हैं, उसका बाह्य उपाय यही समझमे आया है। श्रीद्रोपदी जी को कहिए जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा का स्वाध्याय करें।

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

श्री निर्मल बाबूकी माँ का समाचार भगतजी द्वारा जान-कर चित्तमें क्षोभ हुआ परन्तु इस वाक्यको पढ़कर सन्तोष हुआ :—

जं जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि,
णादं जिणेण णियदं जम्म वा अहव मरण वा।
तं तस्स तम्हिकाले तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि,
का सक्कइ चालयिदुं इन्दो वा अह जिणिंदो वा॥

जो हो कुछ चिन्ता की बात नहीं इस समय उन्हें तात्विक और मार्मिक सिद्धान्त श्रवण कराके स्वात्मोत्थ निराकुल आनन्दामृतका आस्वादन कराके अनन्तानुपम सिद्ध भगवानका ही स्मरण करानेकी चेष्टा करानी ही श्रेयस्करी है। इस गोष्ठीको छोड़कर लौकिक वार्तोंकी चर्चाका अभाव ही अच्छा है। इस ससारमें सुख नही, यह तो एक सामान्य वाक्य प्रत्येककी जिह्वा पर रहता है, ठीक है परन्तु ससार पर्यायके अभाव करनेके बाद तो सुख है, सुख कही नहीं गया केवल विभाव परिणति हटानेकी दृढ आवश्यकता है। इस अवसर पर आप ही उनकी वैयावृत्तिमे मुख्य गणिनी हैं, वह स्वय साध्वी है, ऐसा शत्रुको पराजय करें जो फिरसे उदय न हो। यह पर्याय सामान्य नही और जैसा उनका विवेक है वह भी सामान्य नही। अतः सर्व विकल्पोको छोड एक यही विकल्प मुख्य होना कल्याणकारी है जो असातोदयके मूल कारणका निपात करनेकी चेष्टा सतत रहनी चाहिये। असातोदय रोग मेटनेके अर्थ वैद्य तथा औषधादिकी आवश्यकता है फिर भी इस उपचारमें नियमित कारणता नही। अन्तरग निर्मलतामें वह सामर्थ्य है जो उस रोगके मूल कारणको मेट देता है। इसमे वैद्यादिक उपचारकी आवश्य-

कता नहीं, केवल अपने पौरुषको सम्हालनेकी आवश्यकता है। श्रीवादिराज महाराजने अपने परिणामोंके बलसे ही तो कुष्ट रोग की सत्ता निर्मूल की। सेठ धनञ्जयने औषधके बिना पुत्रका विषापहरण किया। कहा तक लिखें हम लोग भी यदि उस परिणामको सम्हालें तो यह बिजलीका आताप क्या वस्तु है? अनादि ससार आतापको शमन कर सकते हैं। मेरे पत्रका भाव उन्हें सुना देना।

---

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया, समाचार जाने। श्री निर्मलबाबूकी माकी विशुद्ध परणति है असाताके उदयमे यही होता है। और महर्षियोंको भी यह असातोदय अपना कार्य करता है परन्तु उनके मोहोदय की कृशता है अत वह अघाती प्रवृत्ति कुछ कार्य करनेमें समर्थ नहीं होती। यही बात अशत श्री निर्मलबाबूकी मा में भी है अतः वे सप्रसन्न इस उदयको निर्जरारूपमें परणत कर रही हैं। उन्हें इस समय मेरी लघु सम्मतिसे तात्विक चर्चा का ही आस्वाद अधिक लाभप्रद होगा। ससार असार है कोई किसी का नही यह तो साधारण जीवोंके लिए उपदेश है किन्तु जिनकी बुद्धि निर्मल है और भाव ज्ञानी हैं उन्हे तो प्रवचनसारका चारित्र अधिकार श्रवण कराके "आतमके अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परणति न जाय॥" यही शरण है ऐसी चेष्टा करना ही श्रेयस्करी है, अनादि कालके अद्यावधि ससारमे रहनेका मूल

कारण यही विषय कषाय तो है। सम्यग्दर्शन होने बाद विषय कषायका स्वामित्व नहीं रहता अत अविरत होते हुये भी अनन्त संसारका पात्र सम्यक्त्वी नहीं होता। यदि उनकी आयुः शेष है तब तो नियमसे निर्मलभावों द्वारा असाताकी निर्जरा-कर कुछ दिन बाद हम लोगोंको भी उनके साथ तात्विक चर्चा का अवसर आवेगा। आपका प्रबल पुण्योदय है जो एक धार्मिक जीवके वैयावृत्त करनेका अनायास अवसर मिल रहा है। श्रीयुत भगतजीसे मेरी सानुनय इच्छाकार कहना, वह एक भद्र महाशय हैं, उनका समागम अति उत्तम है। श्रीनिर्मल बाबूकी माँको मेरी ओरसे यही स्मरण कराना—अरहत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा व्याधिका सम्बन्ध शरीरसे है जो शरीर को अपना मानते हैं उन्हे व्याधि है, जो भेद ज्ञानी हैं उन्हें यह उपाधि नहीं।

---

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्द्राबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका वाह्याभ्यनर स्वास्थ्य अच्छा होगा, श्रीयुत निर्मल बाबूकी मा का भी अब स्वास्थ्य अच्छा होगा। अनेक यत्न करने पर भी मनकी चचलताका निग्रह नहीं होता। आभ्यन्तर कषायका जाना कितना विषम है। बाह्य कारणोंके अभाव होने पर भी उसका अभाव होना अति दुष्कर है, कहनेकी चातुरता का कुछ वश नहीं। श्रद्धाके साथ साथ चारित्र गुणकी उद्भूति हो, शान्तिका स्वाद तभी आ सकता है। मन्द कषायके साथ

चारित्र का होना कोई नियम नहीं। शेष आपके स्वास्थ्यसे हमें आनन्द दें।

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

इस आत्माके अन्तरंगमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएं उदय होती हैं और वे प्रायः बहु भाग तो संसारके कारण ही होती हैं वही कहा है—

संकल्प कल्पतरु संश्रयणात्त्वदीयं,
चेतोनिमज्जति मनोरथ सागरेस्मिन्।
तत्रार्थस्तव चकास्ति न किञ्चिनापि;
पक्षेपरं भवसि कल्मष संश्रयस्य॥

यह ठीक है परन्तु जो संसारके स्वरूपको अवगत कर आंशिक मोक्षमार्गमें प्रवेश कर चुके हैं उनके इन अनुचित भावोंका उदय नहीं होना ही आंशिक मोक्षमार्गका अनुमापक है। अव्रतीकी अपेक्षा व्रतीके परिणामों में निर्मलता होना स्वाभाविक है। आपकी प्रवृत्ति देखकर हम तो प्रायः शान्तिका ही अनुभव करते हैं। साधु समागम भी तो बाह्य निमित्त मोक्षमार्ग में है। मैं तो साधु आत्मा उसीको मानता हूं जिसके अभिप्रायमें शुभाशुभ प्रवृत्तिमें श्रद्धा से समता आ गई है। प्रवृत्तिमें सम्यग्ज्ञानीके शुभकी ओर ही अधिक चेष्टा रहती है, परन्तु लक्ष्यमें शुद्धोपयोग है। चि० निर्मलबाबूकी मा साहबको अब एकत्त्व भावनाकी ओर ही

दृष्टि रखनी श्रेयस्करी है वह अन्तरंगसे विवेकशीला हैं कदापि स्वरूपानुभूतिसे रिक्त न होती होंगी। सम्यग्ज्ञानीकी दृष्टि बाह्य पदार्थमें जाती है परन्तु रत नहीं होती। औदयिक भावोंका होना दुर्निवार है परन्तु जब उनके होते अन्तरङ्गकी स्निग्धताकी सहायता न मिले तबतक यह निर्विष सर्पके समान स्वकार्यमें क्षम नही हो सकते, धन्य है उन जीवोंको जिन्हें अपनी आत्म-शक्ति पर विश्वास हो गया है। यह विश्वास ही तो मोक्ष महलकी नींव है, इसीके आधार पर यह महल बनता है। इन्हीं पवित्र आत्माओंके औदयिक भाव अकिञ्चितकर हो जाते हैं। तब जिनके देशव्रत हो गया उनके भित्ति बनना कार्य आरम्भ होगया इसके पास इतनी सामग्री नहीं जो महल बना सके इससे निरन्तर इसी भावनामें रत रहता है कब अवसर सर्व त्यागका आवे जो निज शक्तिका पूर्ण विकाश कर महलकी पूर्ति करूं।

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आजकल यहांपर सरदी बहुत पड़ती है। शारीरिक शक्ति अब इतनी दुर्बल हो गई है जो प्रायः अल्प बाधाओंको सहनेमें असमर्थ है। इसका मूल कारण अन्तरङ्ग बलकी निर्बलता है। अन्तरङ्गकी बलवत्ताके समक्ष यह बाह्य विरुद्ध कारण आत्माके अहितमें अकिञ्चितकर हैं परन्तु हम ऐसे मोही हो गये हैं जो उस ओर दृष्टिपात नहीं करते, शीत

निवारणके अर्थ उष्ण पदार्थका सेवन करते हैं परन्तु जिस शरीरके साथ शीत और उष्ण पदार्थका सम्पर्क होता है उसे यदि पर समझ उससे ममत्व हटा लें तब मेरी बुद्धिमें यह आता है वह जीव बर्फके समुद्रमें भी अवगाहन करके शीत स्पर्शजन्य वेदना का अनुभव नहीं कर सकता। यह असङ्गत नहीं घोर उपसर्ग में आत्मलाभ प्राप्तिवाले सहस्रशः महापुरुषोंके आख्यान हैं। श्री निर्मलबाबूकी मांजी का स्वास्थ्य अच्छा होगा—क्योंकि बाह्य निमित्त अच्छे हैं, यह अन्तरङ्ग सामग्रीके अनुमापक हैं। यद्यपि ज्ञानी, जीवमे इनमें कुछ भी उत्कर्ष नहीं मानता क्योंकि उसकी दृष्टि निरन्तर केवल पदार्थ पर ही जाती है, केवल पदार्थ के साथ जहांपर की संमिश्रणताकी प्रबलता है वही तो नाना यातनाए हैं अतः आप निरन्तर उन्हें आत्म केवलकी ओर ही ले जानेका प्रयास करें। जिस जोवने यह किया वही तो समाधि का पात्र है। पात्र क्या तन्मय है? समाधिमें और होता ही क्या है? शरीरसे आत्माको भिन्न भावनेकी ही एक अन्तिम क्रिया है जिन्होंने शरीर सम्बन्ध कालमें वियोग होनेके पहले ही इस भावनाको दृढतम बना लिया है उनकी तो अहर्निश समाधि है। अन्तरग मोहकी वासना यदि पृथक हो गई तब बाह्यसे यदि क्रियामें असातोदय निमित्तजन्य विकृति हो जावे तब फलमें बाधा नही और सातोदयमें अनुकूल भी क्रिया हो जावे और मोह वासना न गई हो तब फलमें बाधा ही है। अबके वर्षा बाद मेरा स्वास्थ्य भी कुछ विशेष सुविधा जनक नहीं फिर भी

अच्छा ही है इसीमें सन्तोष है, सन्तोष न करना ही चरम उपाय है वह पहले नहीं होता। किसीके हाथ उत्तम पुष्प ऐसे खड्डेमें गिरा जो मिलना कठिन हो गया, तब क्या कहता है "कृष्णाहेतु" यही बात पहले हो, तब क्या कहना है। अस्तु, अपने और श्री चि० निर्मलबाबूकी मा का स्वास्थ्य विषयक पत्र देना। मैं पोस्टेज आदि नहीं खरीदता अत. पत्र भेजें तब उसमें उत्तरको टिकट रख देवे।

—

श्रीयुत शान्ति रसामृतपान कर्त्री अनूपमाला देवी योग्य इच्छाकार

पत्र आया, वृत्त जाने। स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है यह भी भीतरकी शुद्धिका ही माहात्म्य है। समाधिमरण तो जब समय आवेगा अनायास हो जावेगा, उसकी चिन्ता न करो, केवल वर्त्तमान परिणामोंकी निर्मलता पर दृष्टि रक्खो। क्योंकि सम्यग्ज्ञानी जीवके जो औदयिक भोग है उसमें उसके वियोग बुद्धि है और आगामीकी अभिलाषा नहीं। अतीतका प्रतिक्रमण है। ऐसी जिसके सावधानी है उसे भय किस बातका? जब आपका परिणाम वर्त्तमानमें उत्तम है तब उत्तरकालमें उसका फल उत्कृष्ट ही होगा। आप यह बात अतरगसे अच्छी तरह हृदय मे धारण कर लो जो पञ्चम गुणस्थान वालेके वीतरागी मुनि की शान्तिका आस्वाद नही आ सकता। ध्यान भी वहीं तक होगा जितनी कषायकी कृशता है परिग्रहके सम्बन्धसे पञ्चम गुणस्थानमें रौद्र ध्यान तककी सम्भावना है परन्तु वह अधो-

गतिका कारण नहीं। सर्वथा मूर्च्छाका त्याग अणुव्रतवालोंके नहीं हो सकता। अतः व्यर्थकी चिन्ता न करो और सानन्द सर्व पदार्थोंसे ममत्वको छोड़नेकी चेष्टा करो, अब जहां तक बने आत्माका परिग्रह आत्मा ही है, इसका निरन्तर रसास्वाद लो। बुद्धिमान मनुष्य परको अपना परिग्रह नहीं मानता, तब जो आपके भाव होते हैं वह भी तो औदयिक हैं उन्हें अनात्मीय जान उनसे अपनेको भिन्न समझो, उनमें जो ज्ञायक भाव है उसे आत्मीय जान, उसीमें रत हो, उसीमें सन्तोष करो, उसीसे तृप्ति होगी। और इस समय सुगम ग्रन्थोंका जो सरल रीतिसे समझमें आ जावे श्रवण करो 'परमात्मा प्रकाश' बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। 'समाधि शतक' पूज्यपाद स्वामीका अद्भुत ग्रन्थ है, उसका भी स्वाध्याय श्रवण करो। और कायकी कृशताको गौणकर कषायकी कृशता पर ध्यान देना। वाह्य त्यागकी वही तक मर्यादा है, जो आत्म परिणामोंमें निर्मलताका साधक हो।

मैं पोस्टेज नही खरीदता इससे पत्र देनेमें विलम्ब होता है। श्रीप्रशममूर्ति चन्दाबाईजीसे हमारा इच्छाकार, उनकी शीतलकर समुदाय भवाताप आपका शांत होगा। ऐसी मेरी भावना है।

---

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी साहब योग्य इच्छाकार,

आप सानन्दसे होंगी। बहुत समयसे आपके स्वास्थ्यका पत्र नहीं आया सो देना। तथा ससारकी दशा अति भयंकर है यह यूरोपीय युद्धसे प्रत्यक्ष हो गयी, फिर भी मोहकी बलवत्ता

जो प्राणी आत्महितमें नहीं लगता। श्री निर्मल बाबूजी सानन्द होंगे तथा श्री मां जी भी सानन्द होंगी। वही जीव सुखी है जो ससारसे उदासीन है क्योंकि इसमें सिवाय विपत्तिके कुछ सार नही।

—

श्री शान्ति मूर्ति अनूपा देवीजी इच्छाकार,

आपने जो आजन्मसे धर्मध्यानमें अपनी आयु को बिताया जब विभावोंको अवसर था उसकालमें अपने स्वरूपकी साव-धानतासे रक्षा की, अब तो कोई निमित्त कारण ही उन बिभावोंके उत्पन्न होनेमें नहीं रहे अब तो शान्तिसे ही स्वरूपकी उन्मुखतामें ही अपनी वृत्ति रखना। यही तो अवसर शत्रुके पराजय करनेका है उसके सहायक मन, बचन, काय तो दुबल हो ही गये हैं, अब तो केवल अपने ज्ञाता द्रष्टाकी स्मृतिकर उसे ऐसा पछाडो जो फिर उठनेका साहस न करे। आपको तो चन्द्रिकाकी ज्योत्स्ना भाग्यसे मिल गई है जो शत्रुको छिपनेका भी अवसर नही मिल सकता। एक बात हमारी मानना, जो गुड देनेसे मरे उसे विष न देना। अत अब कायके कृशताके अर्थ उद्यम न करना, स्वयमेव भाग्योदयसे हो रही है अब तो यही भावना भावो—

इतो न किञ्चित्ततोन किञ्चिद्यतो-
यतो यामिततो न किञ्चित्।

विचार्यपश्यामि जगन्नकिञ्चित्
चात्म बोधादधिकं न किञ्चित् ॥

विशेष क्या लिखू ।

—

श्री प्रशम मूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । श्री अनूपमाला देवीको इस समय आपसे भद्र जीव ही शान्ति कर सकते हैं । इस वर्ष यहां अत्यन्त गर्मी पड रही है । मैं पैदलके कारण नहीं जा सका । मेरी समझमें तो विकल्पोंका कोई प्रायश्चित नहीं, असख्यात लोक प्रमाण कषाय हैं अत जहातक बने अभिप्रायसे उनका पश्चात्ताप करना ही प्रायश्चित है । रस छोड़ना, अन्न छोड़ना तो दुर्बलावस्थामें स्वास्थ्यका बाधक होनेमें प्रत्युत विकल्पोंकी वृद्धि ही का साधक होगा । विकल्पोंका अभाव तो कषायोंके अभावमें होता है । कषायोंके अभावके प्रति तत्त्वज्ञान कारण है, तत्त्वज्ञानका साधक शास्त्र व साधु समागम हैं वस्तुत. आप ही आप सर्व कुछ समर्थ है, किंतु हमारी ही शक्तिको हमारी ही आभ्यन्तर दुर्बलताने अकर्मण्य बना रक्खा है । मनकी दुर्बलता ज्ञानकी उत्पत्तिमे बाधक है किन्तु कषाय व विकल्पोंका साधक नही अत मनकी कमजोरीसे आत्माका घात नहीं अत उन्हें कहिये इस श्रद्धानको छोडो जो हमारा दिल कमजोर है इससे विकल्प होते हैं अंतरगसे यही भावना भावो जो हम अचिंत्य वैभवके पुञ्ज हैं सोहम इन

शत्रुओंका निपात करेंगे। कायरतासे शत्रुका बल वृद्धिगत होता है और अपनी शक्तिका ह्रास होता है अतः जहां तक बने कायरता छोडो और अपने स्वरूपको ज्ञाता दृष्टा ही अनुभवन करो वहा बलवान और निर्बल सर्वको शरण है। समवसरणकी विभूतिवाले ही परम धाम जाते हैं और व्याघ्री द्वारा विदीर्ण हुए भी परमधामके पात्र होते हैं। सिंहसे भी बलवान सुधरते हैं और नकुल बंदर भी उसीके पात्र होते हैं। सातामें भी कल्याण होता है और असातामें भी कल्याण होता है। देवोंके भी सम्यग्दर्शन होता है, और नारकीयोंके भी सम्यग्दर्शन होता है। अत. दुर्बलता सबलताके विकल्पको त्यागकर केवल स्वरूपकी ओर दृष्टि देनेका कार्य ही अपना ध्येय होना चाहिए। बंधका कारण कषाय वासना है विकल्प नहीं।

एक पत्र हेमराजके भाईके हाथ भेजा था पहुचा होगा। यहा अभी आनेका समय नही, बाह्य साधनोंकी त्रुटि है। हम पोतके पक्षीकी तरह अनन्य शरण हैं।

---

श्रीयुत प्रशममूर्त्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। यद्यपि आभ्यन्तर स्वास्थ्य अच्छा है तब यह भी अच्छा ही है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे यह स्वास्थ्य भी कथञ्चित् उसमे उपयोगी है, आपके धर्मसाधनमे जो उपयोगी ज्ञान है वही मुख्य है। विशेष चि० निर्मलबाबूकी मा से इच्छाकार कहना। और कहना कि पर्याय

की सफलता इसीमें है जो अब भविष्यमें इस पर्यायका बन्ध न हो और वह अपने हाथकी बात है, पुरुषार्थसे मुक्ति लाभ होता है। यह तो कोई दुष्कर कार्य नहीं। मुझे ५ दिनसे ज्वर हो जाता है अब कुछ अच्छा है। असाताके उदयमें यही होता है परन्तु जिनचरणाम्बुजकी श्रद्धासे कुछ दुःख नहीं।

—

श्री प्रशममूर्ति चन्द्राबाईजी योग्य इच्छाकार,

आप सानन्द वहां पर होंगी। आपके निमित्तसे यहां पर शान्तिका वैभव उचित रूपसे था। आप जहां तक स्वास्थ्य लाभ न हो शारीरिक परिश्रम न करें, मानसिक व्यापारकी प्रगतिका रोकना तो प्रायः कठिन है। फिर भी उसके सदुपयोग करनेका प्रयास करना महान आत्माओंका कार्य्य है। मनकी चंचलतामें मुख्य कारण कषायोंकी तीव्रता और स्थिरतामें कारण कषायोंकी कृशता है। कषायोंके कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है। चरणानुयोग ही आत्माको अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा करनेमें रामबाणका कार्य करता है। द्रव्यानुयोग द्वारा की गई निर्मलताकी स्थिरता भी इस अनुयोगके बिना होना असम्भव है, तथा यही अनुयोग करणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट करणोंका भी परम्परा क्या साक्षात् जनक है? अतः जिनकी चरणानुयोग द्वारा निर्मल प्रवृत्ति है, वही आत्मायें स्व-पर कल्याण कर सकती हैं। चि० निर्मल बाबूकी जननी भी

सानन्द होंगी। उनसे मेरी इच्छाकार कहना तथा बुआजी व उनकी सुपुत्री द्रोपदीजीसे भी यथायोग्य कहना।

---

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया, समाचार जाने। श्रीयुत चि० निर्मलकुमार बाबूजीकी मा का स्वास्थ्य अब अच्छा होगा। असातोदय में प्राणियोंको नाना प्रकारके अनिष्ट सम्बन्ध होते हैं और मोहोदयकी बलवत्तासे वे भोगने पड़ते हैं, किन्तु जो ज्ञानी जीव है, वे मोहके क्षयोपशमसे उन्हें जानते हैं, भोगते नहीं। अतएव वहां वाह्य सामग्री उन्हें कर्मबन्ध में निमित्त नहीं पड़ती, प्रत्युत मूर्च्छाके अभावसे निर्जरा होती है। यह ज्ञान वैराग्यकी प्रभुता है। जैसे, श्री रामचन्द्रजी महाराजके जब मोहकी मन्दता न थी, तब एक सीताके कारण रावणके वंशके विध्वंसमें कारण हुए और मोहकी कृशतामें सीतेन्द्र द्वारा अभूतपूर्व उपसर्गको सहन कर केवलज्ञानके पात्र हुए। अतः चि० निर्मल बाबूजीकी मा के मोहकी मन्दता होनेसे यह व्याधि रूप उपाधि प्राय शान्तिका ही निमित्त होगी। मेरी तो उनके प्रति ऐसी धारणा है। अत मेरी ओरसे उन्हें यह कह देना— यह यावत् पर्याय सम्बन्धी चेतन अचेतन आपके परिकर हैं उसे कर्मकृत उपाधि जान स्वात्मरत रहना, यही अनत सुखका कारण होगा। क्योंकि वस्तुत कौन किसका है और हम किसके हैं। यह सर्व स्वाभिक ठाठ है, केवल कल्पना ही का

नाम संसार है। क्योंकि इस कल्पनाका इतना विशाल क्षेत्र है जो अद्वैतवादकी तरह ससारको ब्रह्म मान रक्खा है और इसी प्रभावसे नैयायिकों की तरह स्वात्ममें तादात्मसे सम्बन्धित जो ज्ञान उनको भी भिन्न समझ रक्खे है। इन नाना प्रकार के कल्पना जालसे कभी तो हम पर पदार्थके सम्बन्धसे सुखी और कभी दुखी होते हैं और इसीके कारण किसी पदार्थका संग्रह और किसीका वियोग करते २ आयुःकी पूर्णता कर देते हैं, स्वात्म कल्याणका अवसर ही नही आता। जब कुछ मोह मद होता है, तब अपनेको परसे भिन्न जाननेकी चेष्टा करते हैं और उन महात्माओंके स्मरणमे स्वसमयका निरन्तर लगानेका प्रयत्न करते हैं और ऐसा करते २ एक दिन हम लोग भी वे ही महात्मा हो जाते हैं। क्योंकि लोकमे देखा, दीपकसे दीपक जोया जाता है। बडे महर्षियोंकी उक्ति है पहले तो यह जीव मोहके मद उदयमें दासोह रूपसे उपासना करता पश्चात् जब कुछ अभ्यासकी प्रबलतासे मोह कृश हो जाता है, तब सोह सोह रूपसे उपासना करने लग जाता है। अन्तमे जब उपासना करते २ शुद्ध ध्यानकी ओर लक्ष्य देता है, तब यह सर्व उपद्रवोंसे पार हो स्वय परमात्मा हो जाता है, अत जिन्हें आत्म कल्याण करनेकी अभिलाषा होवे वे पहले शुद्धात्मा की उपासना कर अपनेको पात्र बनावे। पात्रताके लाभमें मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ नहीं। श्रेणी चढ़नेके पहले इतनी निर्मलता नहीं जो शुभोपयोगकी गौणता हो जावे जो मनुष्य नीचली अवस्थामें

शुभोपयोगको गौण कर देते हैं, वे शुद्धोपयोगके पात्र नहीं। शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नही होता। वह तो अप्रमत्तादि गुणस्थानोंमें परिणामोंकी निर्मलतासे स्वयमेव हो जाता है। प्रयास तो कथन मात्र है, सम्यग्ज्ञानी जीव शुभोपयोग होनेपर भी शुद्धोपयोगकी वासनासे अहर्निश पूरितान्त:करण रहता है। शुभोपयोगकी कथा छोडो उसको अशुभोपयोगके निमित्तोंके होनेपर भी शुद्धोपयोगकी वासना है क्योंकि शुभाशुभ कार्य करनेका भाव न होनेपर भी चारित्र मोहके उदयमें उनका होना दुर्निवार है, अत. उसकी निरन्तर उन दोनों भावों के त्यागमे ही चेष्टा रहती है किंतु शुद्धोपयोगका उदय न होनेसे उसके शुभोपयोग होता है, करता नही। हाँ अशुभोपयोगकी अपेक्षा उसकी प्राय. शुभोपयोगमे अधिकाश प्रवृत्ति रहती है। इसमे भी कुछ तत्व है अशुभोपयोगमे कषायोकी तीव्रता है और शुभोपयोगमे मन्दता है अत. शुभोपयोगमे अशुभोपयोगसे आकुलता मन्द है और आकुलताकी कृशता ही तो सुखके भोगने में आंशिक सहायक है। आगममे शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगकी समानाधिकरता श्री १०८ कुन्दकुन्द स्वामी ने दिखाई है। अत. सम्यग्दृष्टिके इसीसे सिद्ध होता है जो अशुभोपयोगकी प्रचुरता नही, बाह्य क्रिया से अन्तरंगकी अनुमिति प्राय सर्वत्र नही मिलती, अत. सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवो के क्रिया की समानता देख अन्तरंग परिणामोंकी तुल्यता समान नही। श्रीयुत महाशय भगतजी से हमारा

इच्छाकार कहना। नन्हें अभी ज्वर से पीडित था अब अच्छा है आपने लिखा सो वह आनेको तैयार है।

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया समाचार जाने। जैन बालाश्रम खुल गया यह सुखद समाचार जानकर परम हर्ष हुआ। श्री अनूपादेवी को मेरी समझमें मूर्छाका कारण शारीरिक कृशता है, मानसिक कृशता नही—जो आत्मा मानसिक निर्मलता की सावधानी रखनेमें प्रयत्नशील रहेगा वही इस अनादि ससार के अन्त को जावेगा। उस मानसिक बलमें इतनी शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलकोंकी कालिमा को पृथक कर देता है। इस ससारमें मानव-जन्म की महर्षियो ने बहुत ही महिमा गायी है परन्तु वह महिमाका धनी वही है जो अपनी परणतिसे कलुषता को पृथक कर दे—यह कलुषता ही आत्मा को अज्ञान चेतना का पात्र बनाती है। कलुषताका मूल कारण यह जीव स्वय बनता है हम अज्ञानसे परको मान उसके दूर करनेका प्रयास करते हैं और ऐसा करनेसे कभी भी उसके जालसे मुक्त होनेका अवसर नही आता। वहा श्री अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते ;
उत्तरन्ति नहि मोहवाहिनीं शुद्धबोध विधुरांधवुद्धयः।

यद्यपि अध्यवसान भावोंकी उत्पत्तिमे पर वस्तु भी निमित्त है, पर वस्तु ही निमित्त हैं इसका निरास स्वामीने किया है, फिर भी बन्धका कारण अध्यवसान भाव ही है और वह जीव का उस अवस्थामे अनन्य परिणाम है।

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव अणण्ण परिणामा ;
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादि।

अत. बन्धका मूल कारण आप ही है जब ऐसी वस्तु गति है तब इन निमित्तोंमें हर्ष विषाद करना ज्ञानी जीवोंके सर्वथा नही, सर्वथा नही इसका यह भाव है जो श्रद्धा तो ऐसी ही है परन्तु चारित्र मोहसे जो रागादिक होते हैं उनका स्वामित्व नही अत उसकी कला वही जाने। स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु जिसका स्वास्थ्य कहते हैं उसका अभी श्रीगणेश भी नही।

श्री अनूपादेवीसे कहना पर्यायकी कलासे घबराना नही, मानुष विचारे की कहा बात दिनकर की तीन दशा होत एक दिनमे, पर्यायकी तो यही गति है अत अपनी परिणति पर ही परामर्श कर अजरामर पदकी अभिलाषा ही इस समय लाभ-प्रदा है। कुटुम्बादि सर्व पर है उनसे न राग और न द्वेष यही भावना श्रेयामार्गकी गली है।

---

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य दर्शनविशुद्धि.,

यहा पर इस वर्ष कुछ गर्मीका प्रकोप है, मेरा विचार हजारीबाग जानेका है। श्रीयुत चिरंजीवी निर्मलबाबूकी मार्जी

का स्वास्थ्य अच्छा होगा इस समय उनके परिणामोंकी स्थिरताका मूल कारण आप है, क्योंकि आपके उपदेशका उनकी आत्मा पर प्रभाव पडता है। ससारमें वे ही मनुष्य जन्मको सफल बनानेकी योग्यताके पात्र हैं जो इसकी असारता में सार वस्तुको पृथक करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं। श्री नेमि-चन्द्र स्वामीका कहना है—

मा मुज्झइ मा रज्जइ मा दूसइ इट्ठणिट्ठ अत्थेसु,
थिरमिच्छइ जइ चित्तं विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए।
मा चिट्ठइ मा जंपइ मा चिंतइ किंपि जेण होइ थिरो;
अप्पा अप्पम्मिरओ इणमेव परं हवे झाणं॥

इन दो गाथाओंमें सम्पूर्ण कल्याणका बीज है जो आत्मा इसके अर्थपर दृष्टि देकर चर्य्यामें लावेगा वह नियमसे संसार समुद्रसे पार होगा। क्योंकि ससारका कारण मूल राग द्वेष ही तो है इस पर जिसने विजय प्राप्त कर ली उसके लिये शेष क्या रह गया? अत· श्री माजी से कहना निरन्तर इसीपर दृष्टि हो और यही चिन्तवन करो, यही श्री १००८ भगवान वीर प्रभु का अन्तिम उपदेश है समाधिके अर्थ इसके अतिरिक्त सामग्री नही। काय कषाय कृश भी इसी परम मन्त्रसे अनायास हो जाते हैं। इस समय इन आत्म-भिन्न पर पदार्थोंमें न तो रागकी आवश्यकता है और न द्वेषकी, मध्यस्थ भावना ही की चेष्टा उपयोगिनी है। यावान कुटुम्बवर्ग है उसको तत्व ज्ञानामृत द्वारा ससारातापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका

फल होना चाहिए। धन्य हैं उन ज्ञानियोंको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है। जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका ?

—

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपके विचार प्राय. बहुत ही उत्तम हैं। बालाश्रमके विषयमे अभी थोड़े दिन और ठहर जाइये और यदि अशान्ति की विशेष सम्भावना हो तब श्रावण तक छुट्टी कर दीजिये श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्राय. आप लोग इन सर्व आपत्तियोंसे मुक्त रहेंगे यह मेरी दृढ श्रद्धा है, यद्यपि परिग्रह दुःखकर है, परन्तु गृहस्थावस्थामे उसके बिना निर्वाह भी तो नही, श्री निर्मलबाबू जीकी मा का स्वास्थ्य मेरी समझमे शारीरिक बलकी त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्यों मे साधक नही होता। आप तो विशेष अनुभव शीला है, वर्तमानमे बहुतसे जीव ऊपरी व्रतोंपर मुख्यता देते हैं और उनके अर्थ आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नही रखते फल यह होता है जो परिणामोमे सहन शक्ति नहीं रहती। अत जहां तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थों का सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों, आभ्यन्तर तो अरहन्त परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा इसका उपचार किया जावे और बाह्यमें जो अनुकूल और उन्हें रुचिकर हो। ससारमें शान्तिका [illegible] रूप से अभाव ही है ऐसा नही, ससारमे ही शान्ति है किन्तु उसके

बाधक कारणोंको हेय समझकर उन्हें त्यागना चाहिए। केवल कथासे कुछ नहीं।

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिबद्धो,
जइ णवि कुणइ च्छेदं ण सो णरो पावइ विमोक्खं।

बन्धनकी कथासे बन्धका ज्ञान होगा, बन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है। भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है ? अत सब प्रकारसे प्रयत्नको उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओंके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोडनेमें ही सफल है। इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्बन्ध है और अतिन्द्रिय ज्ञानके अभावमे ज्ञानका साधक यह शरीर ही बन रहा है अत हम निरन्तर उसीकी सुश्रूषामें अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अतमे वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण बन जाता है। मेरा तो यह दृढ विश्वास है शरीर और मनोबल कम होने पर भी यदि वासनाका बल विकृत नहीं हुवा है तब कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है। देखिये विग्रह गतिमे मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता अत हमारी मुख्यता अतरग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है। जहा तक बने श्री चि० निर्मलबाबूको मा अधिक न बालें और सरल से सरल पुराणको स्वाध्यायमें लावें पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा श्री रत्नकरडमें जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करें। मेरी बुद्धिमें उनका अन्तरंग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु

द्रव्येन्द्रियकी दुर्बलतासे वह उपयोग रूप नहीं होता। स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पोंका साधक ही है क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्यकी हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी नई २ कल्पनाएं होने लगती हैं। आप तो स्वय सर्व विषयक बोधशालिनी है, उनको समझा सकती हैं। विशेष क्या लिखूं जागनेसे कषायकी शान्ति नहीं होगी। इस वर्ष यहापर गर्मीका प्रकोप कम है, आप किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न कीजिये मुझे विश्वास हैं जिनके धर्मकी श्रद्धा है उनके सर्व उपद्रव अनायास शान्त हो जावेंगे। प्रथम तो अभी उपद्रवकी सभावना नही और हो भी तब भी आपक पुण्यसे आपके आश्रमकी रक्षा ही होगी। भावि विघ्न हरणके अर्थ बाहुबलि स्वामीका पूजन नियमसे होना चाहिये। श्रीयुत चिरजीवि निर्म्मलबाबू व चक्रेश्वर कुमारको श्री शान्तिनाथ स्वामीका पूजन नियमसे करना चाहिए, अनायास सर्व विघ्न शान्त होंगे। श्री अनूपादेवीका भी स्वास्थ्य इसीसे शात होगा वे भी १ पाठ विषापहारका नियमसे किया करें। यदि आश्रमकी छात्रा रही भी आवे तब उनके दुवारा निरन्तर सहस्र नामका पाठ कमसे कम ३ बार तो अवश्य कराइये, और प्रतिदिन महामन्त्रकी तीन माला ३ बारमे फेरे तथा निरन्तर अरहतका ही स्मरण करें कुछ भी आपत्ति न आवेगी।

—

श्री शान्तिनाथाय नम

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो,
न गांगमम्भो न च हारयष्टयः ;
यथा मुने तेऽनघवाक्यरश्मयः
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चितां ।

श्री शान्तिमूर्त्ति अनूपादेवी योग्य इच्छाकार,
श्रीयुत प्रशममूर्त्ति चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया समाचार जाने। आपके दिल और दिमाग कमजोर हैं सो इससे आपकी जो चरम अभिलाषा है उसमे तो यह योग बाधक नहीं, क्योंकि ज्ञानकी पूर्णताका विकाश तो भाव मनके अभावमें ही होता है और परम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति काय योगके ही अभावमें होती है, मन जितना बलिष्ठ होगा उतना ही चचल होगा, तथा इन्द्रियोमे जितनी प्रबलता होगी उतनी ही विषयोन्मुख होनेमें साधक होंगी। अत इनकी यदि निर्बलता हो गई, हो जाने दो। अब रही बात भावोंकी शुद्धताकी सो भावों का अशुद्धताका कारण मिथ्यात्व और कषाय है। उस पर विचार करिये। मिथ्यात्व तो आपकी सत्ता में है ही नही। अब केवल कषाय ही बाधक कारण रह गया, अस्तु कषायके होनेमे बाह्य नो कर्म विषयादिक हैं सो उनके साधक कारण इन्द्रियादिक हैं वह आपके पुण्योदयसे कृश ही हो गये हैं अब तो केवल सिद्धेभ्योनम की ही भावना कल्याण कारिणी है। कल्याणके अर्थ ही इन

साधनोंकी आवश्यकता हैं। आत्मा यदि देखा जावे तब स्वभावसे अशान्त नहीं, कर्म कलंकके समागमसे अशान्त सदृश हो रहा है। कर्म कलंकके अभावमें स्वयमेव शान्त हो जाता है जैसे श्री पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री शीतल मूर्ति सीताजीके विरहमें कितने व्याकुल रहे जो वृक्षों से पूछते हैं तुमने सीता देखी है? वही पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मण के मृत शरीरको ६ मास लेकर सामान्य मनुष्योंकी तरह भ्रमण करते रहे और जब कर्म कलंक उपशम हुआ, सर्व उपद्रवों से सुरक्षित हो स्वाभाविक आत्मोत्थ अनुपम चिदानन्द मय हो कर मुक्ति रमाके बल्लभ हुए—यही बात ज्ञान सूर्योदय नाटकमे आर्या है—

कलत्रचिन्ताकुलमानसो यो जघान लङ्केशमवाप्तयुद्धः
स किं पुनः स्वास्थ्यमवाप्य लोके समग्रधीर्नो विरराम रामः

अत सम्पूर्ण विकल्पोंको छोड निर्बलावस्थामें एक यही विकल्प करना अच्छा है अर्हन्त परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा अथवा यह भावना श्रेयस्करी है आप का मन निर्बल है और मन ही आत्माको नाना प्रकारकी चचलतामें कारण है शत्रु निर्बल का जीतना कोई कठिन नही अत ज्ञानासिकर ऐसा निपात करिये जो फिर शिर न उठा सके, इसके वश होते ही और शेष शत्रु सहज ही में पलायमान हो जावेंगे।

यही परमात्मप्रकाशमें योगीन्द्रदेवने कहा है—

पंचहंणायकु वसि करहु जेण होंति वसि अण्ण
मूल विणट्ठइ तरुवरह अवसइं सुक्कहिं पण्ण

आपकी इस समय जो चंचलता है वह इस विषय की है कि हमारा अन्तिम समय अच्छा रहे सो निष्कारण है क्योंकि आपने उस मार्ग में प्रयाण कर दिया अब उतावली करने से क्या लाभ ? अतः श्री धनञ्जय के इस श्लोकको विचारिये कैसा गम्भीर भाव है—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः

अत स्वकीय कल्याणका मार्ग अपने में जान सानन्द काल यापन करिए और यह पाठ निरन्तर चिन्तना करिये—

सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैक स्वभावोह निर्विकल्पोह उदासीनोह निज निरञ्जन शुद्धात्म सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुष्ठान रूप निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिसञ्जात वीतराग सहजानन्द रूप सुखानुभूति मात्र लक्षणेन स्वसंवेदन ज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्य. प्राप्योभरिता वस्थोह। रागद्वेष मोह क्रोध मानमायालोभ पंचेन्द्रिय विषय व्यापार मनोवचन काय व्यापार भाव कर्म द्रव्य कर्म नो कर्म ख्याति पूजा लाभ दृष्ट श्रुतानुभूत भोगाकांक्षा रूप निदान माया मिथ्या निदान शल्यत्रयादि सर्व विभाव परिणाम रहित शून्योह जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचन काये

कृतकारितानुमतैश्च शुद्ध निश्चय नयेन तथा सर्वेऽपिजीवा इति निरन्तर भावना कर्त्तव्या ।

—

श्रीयुत प्रशम मूर्ति साहित्य सूरि श्रीचन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार

आपका धर्मध्यान सानन्द होता होगा क्योंकि आपको इन दिनों १ निर्मल भव्य मूर्ति श्री निर्मल बाबूकी माताके सुश्रूषा करने से वैयावृत्त का अनायास निमित्त मिल गया है धर्मात्मा जीव वही हैं जो कष्ट कालमें धीरतासे विचलित नहीं होते, यों तो वस्त्राभावे ब्रह्मचारी बहुतसे मिलेंगे परन्तु आपत्ति कालमें शान्तिसे समयका निर्वाह करनेवाले विरले ही होते हैं। वही जीव जगतकी वायुसे अपनी रक्षा कर सकते हैं जिन्हें सत्य आत्मज्ञान का परिचय है, वास्तव बात तो यही है। अधिक पर पदार्थों की सगतिसे किसी ने सुख नहीं पाया, इसको त्यागनेसे ही सुखके पात्र बने अब उनका शारीरिक रोग शान्त होगा, मेरा तो दृढ विश्वास है पहले भी शान्त था क्योंकि जिसे अतरग शान्ति है उसे बाह्य वेदना कष्ट करी नहीं होती, मेरा उनसे धर्मस्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और कहना जितनी शान्ति है उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि ही इस वेदनाका मुख्य प्रतिकार है। सर्व त्यागी मण्डल आपकी शान्ति वृद्धिका इच्छुक है ।

—

श्रीयुत कृष्णाबाईजी योग्य इच्छाकार,

संसारमें शांतिका सरल मार्ग है तथा स्वाधीन है तथा इसके अन्दर यावती संसारकी आपत्तियां है स्वयमेव उदय नही होती। इसका फल उसी समय मिलता है अतः सब विकल्पोंको छोड इसीके अर्थ अपना जीवन लगा दो माता पिता भाई बन्धु सर्व अपने २ परिणामोंके अनुकूल परिणमते है यदि और दानादिक की भी कोई चिन्ता न करो धन वस्तु भी पराया है परवस्तुसे कभी लाभ हुआ है क्या? जो धनसे पुण्य मानते हैं वे वस्तु ही नहीं जानते है पुण्यका कारण आभ्यन्तर मन्द कषाय है न कि धन। अभी आपके पिताने स्वात्म धर्मकी प्राप्तिका जो मार्ग ग्रहण किया है उसके रंगमे यह स्वाधीन शुद्धोपयोगका मार्ग अपना रंग नही जमा सकता, शान्तिका मार्ग निवृत्तिमे है जिनेन्द्रदेवका तो यह उपदेश है यदि कल्याण अभीष्ट है तब हममे राग छोड दे जहां गीतामे श्रीकृष्णभगवानका यह उपदेश है निष्काम करो वहांपर जिनेन्द्रका यह उपदेश है सम्यग्ज्ञानी होनेके बाद कर्तृत्व ही नहीं रहता है अज्ञानावस्थामे आत्मा करता है विशेष क्या लिखें यदि कभी दानकी इच्छा हो और अनुकूल धन दो तब ज्ञानदानको छोडकर किसीके दम्भमे न आना।

—

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार,

आप सानन्द स्वाध्याय करिये आने जानेमे स्वाध्याय

नियमको विशेष क्षति पहुंचती है पैदल यात्रा उस समयकी थी जब संघ चलता था अब एकाकी आदमीकी यात्रा तो केवल कष्टकरी है, निमित्तकारण उत्तम मिलना चाहिये, आप जानती हैं केवल नन्हेंके साथमें कहां तक परिणामोंकी निर्मलता रहती, बाबूजीके साथ भी जाते तब भी विशेष लाभ न था हम तो पैदल जाते और वह सवारीमें जाते तब मार्गमें बोलनेको या तो वनके वृक्ष थे या नन्हें और फिर मार्गमें ठीक ठहरनेका सुभीता नहीं, रसोई बनानेको सुभीता नहीं, जहां जाओ प्रासुक पानीकी दिक्कत, अत. इन सब बाधक कारणोंका अनुभव कर यहीं रहना ही उचित समझा और यह नियम किया है कि प्रतिदिन इस यात्राकी विघ्नशान्तिके अर्थ पूर्ण समयसार संस्कृतटीका सहित बांचना यदि किसी दिन आलस आजावे तब एक रस छोडकर भोजन करना। बीमारीमें नियम नहीं, बाबूजी को आप समझा देना जो मेरा विकल्प न करे। हम तो यहांपर उन्हींके निमित्त आये अत. उनका उपकार नहीं भूल सकते यह बात वे जानते हैं यदि वे न होते तब दो वर्षमें यहां आना मुशकिल था उन्हीका साहस था जो लाए, अब आप भी शीतकालमें दो मास शान्तिसे गयामें रहिये और वहांके मनुष्य और स्त्री समाजका कल्याण करनेमें निमित्त कारण बनिये। कल्याणका मार्ग सबमें है, उद्भूत होनेका निमित्त मिलना चाहिये। देखिये देवोंमें मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक शक्ति है तथा उस पर्यायमें पीतादि ही लेश्या है परन्तु फिर भी कर्मभूमि तथा मनुष्य

पर्यायके अभावमें मोक्षमार्गकी व्यक्तता नहीं, सम्यक्त्वमात्रकी ही योग्यता है यहाके निमित्त इतने उत्तम हैं जो अनायास इस पर्यायसे साक्षात् मोक्षमार्गका लाभ यह जीव ले सकता है। अत आपको भी वहा कुछ दिन जनताकी ओर दृष्टि देना चाहिये, हमारी वृत्ति तो पराधीन है प्रथम तो हम परिणामोंसे चपल हैं तथा बातमें पराधीन हैं आजकल ऐसे जीव नहीं, जो किसी की स्थिरता करें दोष देखनेवाले ही हैं यह सर्व कलिका प्रभाव है हमारा तो यहातक विचार आता है जो क्षेत्रन्यास कर लेवें परन्तु अभी एक बार चरमप्रभूकी भूमि स्पर्श करनेका भाव है और कोई शल्य नहीं, काशीसे बाह्यक्षेत्रकी तो शल्य नहीं क्यों कि उस व्रतकी योग्यता नहीं, इस प्रान्तमें आनेका कारण श्री कन्हैयालालजी वा श्री लालू बाबू थे। परन्तु अब वे तटस्थ हैं और यह तटस्थता अच्छी वस्तु है मेरी तो यहा तक धारणा है जो स्वात्म कल्याणमें तटस्थता ही मूल कारण है। परन्तु सर्वत्र तटस्थता यथार्थ होनी चाहिये त्यागका अर्थ ही तटस्थ हैं जहां त्यागमें कषाय है वह तो अशान्तिका मार्ग है।

—

श्रीयुत शान्तिबाईजी भैयाका आशीर्वाद

तुम शान्तिसे जीवन विताना और अन्तरङ्गमें स्वसवेदन करना केवल स्वाध्यायमें चित्त लगाना वहापर यात्राके अर्थ कृष्णाबाई आती है वही धर्मात्मा है इनको जो २ आवश्यकता

हो देना और तुम्हें सँदवा आदि जाना पड़े तो दो या चार दिन यात्रा कर आना कोई चिन्ता न करना।

—

श्रीयुत महाशय लाला बैजनाथजी साहब योग्य दर्शनविशुद्धिः

कल्याणकी प्राप्तिमें ज्ञान ही कारण है मेरी तो समझमें नही आता, ज्ञानसे पदार्थोंका जानना होता है और केवल जानना कल्याणमें कारण हो सो नहीं। बाह्य आचरण भी कल्याणमें कारण नहीं क्योंकि उस आचरणका सम्बन्ध कायसे है। वचनकी पद्धति भी कल्याणमें कारण नहीं क्योंकि आत्मा के योगका निमित्त पाकर पुद्गलोंका परिणमन विशेष है। अतः उत्तम तो यही है जो ज्ञानके द्वारा जो परिणाम बन्धके कारण हैं उन्हें त्यागना चाहिये आपने श्रीयुत प० नन्हेंलालजीको बुलाया अति उत्तम किया ससारमें शान्तिलाभका कारण समागम है। विद्वानोंका समागम तो बड़े ही भाग्यसे होता है यदि आपके सदृश अन्य धनिक लोक इसका अनुकरण करें तब अनायास बहुतसे विद्वान् सानन्द समय बिताने लगें मेरा तो आपसे यही कहना है एक बार आप सराक जातिका अंतरङ्गसे उद्धार कर दीजिये आजकल यहां पर पं० कस्तूरचन्द और प० सुन्दरलालजी दोनों ही आगये हैं मन्दिरका काम हो रहा है प्रायः शीघ्र ही होगा आप प्रेरणा करते रहियेगा।

—

श्रीयुत बाबू बैजनाथजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

पत्र आया समाचार जाने आपकी दृष्टि अच्छी है परन्तु हमको जहांतक पता लगा ज्ञानमार्गकी ओर संकोच ही रहता हैं यह आपकी उदारताका दोष नहीं, पञ्चमकाल है, ऐसा ही होगा आप लोक जो दानी हैं एक रूपसे कार्य करते हैं ज्ञानदान का महत्व तो आचार्योंके हृदयमें था हमलोक उसका महत्व कैसे समझें, इस तरह त्यागके महत्वको भी नहीं समझते, त्यागके महत्वको श्री १००८ तीर्थङ्कर प्रभुने जाना जिन्होंने तीन लोककी सम्पत्तिको भी त्याग दिया हम लोग केवल मानके महत्वको समझते हैं, यही कारण है जो इसके अर्थ अपनी सम्पत्तिका उपयोग करते हैं विशेष क्या लिखें पूरव पश्चिम समुद्रका जोडा है अथवा विरुद्ध दो अभिप्रायवालोंका समागमवत् व्यवस्था हैं परन्तु इसमें सन्तोष है जो २ देखी वीतरागने सो २ होगी वीरा रे अनहोनी नहिं होसी कबहूं काहे होत अधीरा रे।

यह पत्र जो आपके प्रेमी हों उन्हें भी सुना देना—

नोट—एक बार अनाथ बालकोंकी ओर भी तो दृष्टि दो—

"का वर्षा जब कृषी सुखाने"

—

श्रीयुत बाबू बैजनाथजी योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द रहें इसीमें बहुतसे प्राणियोंका कल्याण है, आपने प्राय. बहुभाग आय और आयुका कुटुम्बजनके अर्थ

किया और उसमें इतरका भी लाभ हुआ परन्तु अब शेष समय की आय और आयु अपने कल्याणमें ही देना योग्य है। क्षेत्र में यावत क्षेत्र, उसमें यदि स्वपरके कल्याणके भाव हुये हैं तब संकोच काहेका भावसे विपुल निर्मल हृदयवाले जीवसे तो यह होना असम्भव है उचित तो यह है अब आप कल्याण करो और आत्माश्रित जीवोंको भी सुमार्गमें लाओ बन-बनमें चन्दन नहीं होते एवं घर-घरमें बैजनाथ नहीं होते। आशा है जिस उत्साहसे आपने धर्मध्यानके अर्थ नींव डाली है वह मोक्ष महल तक पहुंचावेगी, हमारी तो यह धारणा है अभव्योंकी कथा हम नहीं कहते। हमारी समझमें आपसे इस प्रातके प्राचीन जैनियोंका उद्धार होगा, शूरोंसे ही विजय होती है कर्मशत्रुओं की विजय उदारोंसे ही होगी कायरसे कुछ न होगा, किसीने कहा है—भेड पूंछ भादों नहीं को गह उतरो पार। श्री भगत जी से हमारा इच्छाकार कहना और यह कहना।

अंगीकृतं सुकृतिणः परिपालयन्ति

उनकी इच्छा जो हो सो वे जानें और जो होना सो होगा संसारमें कोई पदार्थ किसीका परिणमाया नहीं परिणमता और मेरी तो यह प्रबल धारणा है जो किसीके द्वारा किसीके उपकारका भाव आजतक नहीं हुआ जितने भी महापुरुष संसार में आज तक हुये अपने ही क्लेशके दूर करनेके अर्थ व्यापार किये एक भी दृष्टान्त मेरे अल्पज्ञानमें इसके विपरीत नहीं आता यदि कोई महानुभाव मुझे बतानेका कष्ट करें तब मैं उनका बड़ा उप-

कार मानूं। मनुष्य वही है जो अपने आत्माको संसार दुःखसे मुक्त होनेकी चेष्टा करे। संसारके दुःख अपहरणकी इच्छा यदि अपने लक्ष्यको दृष्टिमें रखकर नहीं है तब वह मानव महापुरुषों की गणनामें नहीं आता, मुझे यह विश्वास है जो आपलोक इस तत्वपर अटल श्रद्धा रखते होंगे इस तत्वमें अनेकान्तिक सिद्धान्त नहीं बाधित होता। श्री बैजनाथजी आप भी इसपर ऊहापोह करना यदि बाबू सखीचन्दजीसे भेट हो तब मेरा धर्मस्नेह कहना और कहना कहीं रहो परन्तु लक्ष्यपर निशाना मारना, अब समय है और बहुत नहीं।

—

श्रीयुत महाशय योग्य दर्शनविशुद्धि.

आपसे हमारा कोई परिचय नहीं यह निर्विवाद है परन्तु चैतन्य साजात्वसे हमारा आपका घनिष्ट सम्बन्ध है कृष्णाबाई आपकी व्यवहारसे पुत्री हैं उसके आचारसे प्रतीतिमें आता है कि आप एक सत्पुरुष हैं और इसीसे सर्वममत्वके दूरीकरणके अर्थ आपने काशीवास किया है आपकी श्रद्धा किस मतमें है मुझे ज्ञात नहीं अस्तु किसीमें हो किन्तु यह आपको अनुभवसे मानना पड़ेगा कि मोक्षमार्ग स्वतन्त्रतामें है हम जो भी कार्य-करते हैं उसमें स्वतन्त्र हैं अन्यथा भगवद्गीतामें जो भगवान्का यह दिव्य उपदेश है जो कार्य करो फलाशा त्याग करके करो यहांपर यह विचारणीय है फलाशा न करनेका कर्ता भगवान् तुम बनो तभी बन्धनसे छूटोगे दूसरा यह भी तत्व इससे निक-

लता है कि बंधकी जनक इच्छा ही है और वही संसारकी जननी है जब श्री भगवान् हमें उसके त्यागका उपदेश देते हैं उनके दिव्यज्ञानकी निरीहताकी सीमा हमारे ज्ञान-सह्य है अतः जहांतक बने इसी तत्वकी मीमांसाका परामर्शकर कल्याणके भोक्ता होने की चेष्टा ही परम तत्वकी प्राप्तिका उपाय है केवल मिसरी मधुर है इससे स्वाद नहीं आता। विशेष क्या लिखें अनादि रूढ़ियोंने हमें अपने जालमें फंसा रक्खा है।

---

श्रीयुत महाशय गोबिन्दप्रसादजी साहब योग्य दर्शनविशुद्धि·

पत्र आया समाचार जाने आपके द्रव्यको तो हम न्यायमार्ग का समझते हैं परन्तु हमारा उदय अभी वहांकी यात्राका नहीं, अन्यथा हमारा प्रयास विफल न होता, सरियातक आये। अकस्मात् पैरमें वेदना होगई अब एकदम शान्त है किन्तु मार्गमें स्वाध्यायकी त्रुटि हमको एकदम असह्य हुई जो कि हमारा जीवन है यह शीत ऋतु है स्वाध्याय रात्रिमें ४ घंटा हमारा ईसरीमें होता था वह एकदम चला गया अतः खेद हुआ, शक्ति तो हमारे पैरोंमें १६ मील चलनेकी है, ६ बजे बाद चौधरीवान से चले और १२ मील चलकर १० बजे सरिया आगये। दूसरे लिखनेका एकदम अभ्यास छूट गया। हम रिक्सामें बैठना तो उचित नहीं समझते मनुष्य सवारीका तात्पर्य डोलीसे है सो भी जब चलनेकी शक्ति एकदम न रहे उस समयकी बात है, आप जानते हैं कि मैंने जब गिरिराजपर डोलीपर

जाना अनुचित समझा तब श्रीवीरप्रभुके निर्वाणक्षेत्रको रिकसा पर नहीं जा सकता; वन्दनाका अर्थ अन्तरङ्ग निर्मलता है, जहां परिणामोंमें संक्लेश हो जावे वहां यात्रा जानेका तात्विक लाभ नहीं, आपने लिखा कि हमारे द्रव्यसे यदि यात्रा नहीं करना चाहते तो श्री कन्हैयालालजी वा श्री पतासीबाई खर्च करनेको प्रस्तुत है सो यह कहना तो जब उचित था जब आपके द्रव्यको अयोग्य समझता, तथा मेरे पास भी १००) थे जिनको मैंने बनारस भिजवा दिये, अब यदि २ मास बाद निमित्त मिल गया तब जा सकते हैं परन्तु अभी तो शीतकालमें नहीं जावेंगे समय-सारकी यात्रा करेंगे यह नियम ३ मास तक लिया है जो प्रात काल स्वाध्यायके समय बोलना और फिर नहीं बोलना, तथा ईसरी जाकर १ मासमें एकबार ही पत्र डालना प्रतिपदाको पत्र देना। शेष कुशल है यदि मेरे निमित्तसे आपको कोई प्रकार व्याकुलता हुई हो तो क्षमा करना। जो कर्मरूप उसमें मैं होगया।

—

श्रीयुत महाशय सर्राफजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

आपका पत्र कृष्णाबाईके पास आया और उसे आपने श्री स्वर्गीय गोदावरीके रुपयोंके दान विषयमें सम्मतिके अर्थ बुलाया, ऐसा मालूम हुआ कि आप उसके रुपयोंसे उसकी स्मृतिमें एक भवन बनाना चाहते हैं आपकी इच्छा और आपके सम्मति देनेवालोंकी जो इच्छा होगी वही काम होगा। परन्तु

आप सर्राफ हैं और सर्राफ वह होता है जो बहुमूल्य वस्तुओंकी परीक्षा करता है जैसे सोना चांदी आदि, अब मेरा आपसे कहना है कि धर्मसे उत्तम वस्तु ससारमें नहीं है और इसी धर्ममें वह शक्ति है जो ससार बन्धनसे जीवोंको सुखस्थानोंमें पहुचा देती है अब आप ही विचारिये ७०००) का ईंट चूना भाटाओंमें लगा कर कौनसा उपकार जीवोंका होगा बहुतसे मकान वहा हैं एक आप बनवा देवेंगे, कदाचित् आप कहें कि यहापर बाइया धर्म साधन करेंगी यह कठिन समस्या है कलकत्ता जैसे विलासी नगरमें यह होना आकाशसे फूल चुनना है अत आप विवेकसे काम लीजिये उस द्रव्यको शिक्षामें लगाइये। श्री गोदावरीका भी अभिप्राय ज्ञानदानमें था एकबार कृष्णाबाईसे हमने कहा था जो आप अपना द्रव्य स्याद्वाद विद्यालयमें लगाओ तब उत्तम है क्योंकि सस्कृत विद्याके अर्थ उपयुक्त स्थान में है। तब श्री गोदावरीने भी उसमे सहायता देने का वचन दिया था परन्तु यहासे जाने बाद उसका स्वर्गवास हो गया, किससे कहा जावे, यह तो कृष्णाबाईके पत्रको देखकर कुछ सकेत आपको कर दिया यदि आपके हृदयमे आ जावे तब उसके भावकी पूर्ती करना, न आवे तो हमे कोई खेद नहीं, किन्तु इतना फिर भी कहेंगे कि भवन बनाकर उसका दुरुपयोग न करिये, बनारस देनेका भाव नहीं हो तो अन्यत्र दीजिए, जहा आपके सम्मति दाता कहें वहा दीजिये परन्तु विद्यादानमें ही दीजिये विशेष क्या लिखें क्योंकि हमारा आपका परिचय नहीं, हमसे बटवारार्की सम्मति पूछो तो इस रूपसे उत्तम होगा।

स्याद्वाद विद्यालय २५००)
राजाखेड़ा १५००)
आरा बालाविश्राम १५००)
ईसरी सरागजातिके
विद्यार्थियोंकी रक्षामें १५००)

---

श्री कृष्णाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आत्मा वही दुःखसे छूटनेका पात्र है जो पर पदार्थसे सम्बन्ध छोड़ेगा आप लोगोंकी सहन शक्ति जब शारीरिक इतनी है जो ५ डिगरी ज्वरमें सामायिक करनेका साहस रहता है तब पर पदार्थों से सम्बन्ध छोड़नेमें क्या कठिनता है ? हम कही संसार स्वार्थी हैं तब क्या इसका यह अर्थ है जो हम स्वार्थी नहीं, अतः इन अप्रयोजनीभूत विकल्पोंको छोड केवल माध्यस्थ भावकी वृद्धि करना, राग द्वेष दुःखदायी है ऐसा कहनेसे कुछ भी सार नहीं, करता उसके हम हैं अत आत्मा ही आत्माको दुःख देनेवाला है इसलिये आत्माको निर्मल करनेकी आवश्यकता है उस निर्मलताके अर्थ किसी की आवश्यकता नहीं केवल स्वीय विपरीत मार्गकी गमन पद्धतिको छोड देना ही श्रेयस्करी है। हम क्या करें जिसका प्रश्न है उसका उत्तर यह है जिस वस्तु या परिणामको आप दु.खकर समझते हैं उसे छोड़ दें हमारी तो यही सम्मति है जो आत्माके हितके अर्थ जो भी त्याग करना पड़े करे, वही कहा है।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि,
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।

क्योंकि संसारमें प्रायः प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी है अतः जो मुमुक्षु हैं उनकी क्या स्वात्महितके अर्थ यदि प्रवृत्ति हों तब इसमें क्या आपत्ति है ससारमें तो परार्थ घात करके स्वार्थ साधन करते हैं यहां मोक्षमार्गी केवल स्वार्थ साधनामें ही उपयोगकी चेष्टा रखते हैं अतः निष्कर्ष यह है आपका कल्याण आपसे ही होगा, इतरका सम्बन्ध बाधक ही है हम तो वस्तु ही क्या हैं, मेरी तो श्रद्धा है परमेष्ठीका ससर्ग भी साधकतम नहीं साधकताका निषेध नहीं, तत्व तो सरल है पर उसकी व्याख्या इतनी कठिन है जो बहु यत्न साध्य है परन्तु श्रद्धालु जीवोंको उसकी प्राप्ति कठिन नहीं, पूर्वधारी भी श्रेणि माड़ते हैं और अष्ट प्रवचनके जाननेवाले भी वही काम करते हैं।

---

श्री पूज्य ब्रह्मचारिणी कृष्णादेवीजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया समाचार जाने जिनके इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगमें धीरता रहती है वही जीव सयमका पात्र है शान्तिका कारण निमित्त कारण नही होता, अचेतन पदार्थमें तो निमित्त कारणके व्यापारकी आवश्यकता है परन्तु चेतन पदार्थमें ऐसा नियम नहीं, क्योंकि यहांपर जिसमें कार्य होता है वह चेतन है अत. निमित्त कारण मिलनेपर यदि वह तद्रूप न परिणमै तब निमित्त कारण क्या कर सकता है यही कारण है जो अनन्तबार

ग्रैवेयक जाकर भी यह जीव संसारका पात्र रहा, अतः जहांतक बने अन्तरंगकी त्रुटिको निरन्तर अवगतकर पृथक् करनेकी चेष्टा करना, मेरा तात्पर्य यह नहीं कि निमित्त कारण कुछ नहीं किन्तु वस्तु विचारनेपर वह अकिञ्चितकर ही प्रतीत होता है अतः पुरुषार्थकर अन्तरङ्ग की ऐसी निर्मलता होनी चाहिये जो पर पदार्थोंके आभास होने पर इष्टानिष्ट कल्पना न होने पावे, सर्वथा पराधीन होकर क्या करें कोई उत्तम निमित्त नहीं। यह सर्व व्यापार अज्ञानी मोही जीवोंका है ज्ञानी वीतरागी जीव व्याघ्री द्वारा विदारित होनेपर भी केवलज्ञानके पात्र हुये। आजकल पञ्चमकाल है तब इससे क्या हानि हुई अब भी भद्र-जीव चाहें तब वास्तविक मोक्षमार्गका प्रथम सोपान सम्यग्द-र्शन उत्पन्न कर सकते हैं आप तो देश संयमकी निराबाध सिद्धि के अर्थ प्राणपनसे चेष्टा कर रही हो तब अब आकुलता करनेसे क्या लाभ? कहीं रहो परन्तु जहां शरीर निरोग और आत्म निर्मलता हो इसपर अवश्य ध्यान रखना मैंने तो पहिले ही कहा था कि तुमको सबसे अच्छा स्थान बनारस है एक बार सानन्द से भोजन करो और स्वाध्याय करो ज्ञानार्जनका फल केवल अज्ञान निवृत्ति ही नहीं किन्तु उपेक्षा है। विशेष क्या लिखें हमारा दृढ निश्चय है जिस कालमें जो होना है होगा, अधीरता करनेकी आवश्यकता नहीं मैंने आज तक नहीं आपसे कहा कि अमुक स्थानपर द्रव्य दो और न कहूंगा परन्तु सिद्धान्तके अनु-कूल ज्ञानार्जनके आयतनमें द्रव्यका सदुपयोग होता है। श्री

युत भगतजीसे हमारी इच्छाकार तथा चमेलाबाई आदि से भी कहना।

---

श्रीयुत बाबू गोविन्दलालजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

पत्र आपका वा श्रीबाबू राजेन्द्रकुमार जवेरीका वा पुनः किनारी और दूसरा पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते हैं यह संसार रागद्वेष मूलक है, तथा जब हमारे पास परिग्रह है तब हम कहें हमे इसकी मूर्च्छा नहीं, असम्भव है! वह विकल्प नहीं अन्य होगया, विकल्पजाल छूटना ही मोक्ष मार्गका साधक है। हमारा दिन मौनका सुख और शान्तिमें जाता है निमियाघाटसे ईसरी आगये, परन्तु स्थान यदि मेरेसे पूछा जाय तब निमियाघाट शान्तिप्रद और रम्य तथा जल व वायु दोनोंकी अपेक्षा ईसरीसे अच्छा है।

---

श्रीयुत बाबू गोबिन्दप्रसादजी योग्य दर्शन विशुद्धि.

आपने लिखा यहा आनकर संसार समुद्रके विषम भँवरमें फस गये, सो छूटे कब थे? बाबूजी जबतक आभ्यन्तर मोह की सत्ता बलवती है तब तक इस जीवका कल्याण होना दुर्लभ है आचार्योंने जो लिखा है "निःशल्योव्रती" सो इतना उत्तम लक्षण है जो वचनागोचर इसका भाव है। हम धर्म साधन तो करना चाहते हैं और उसके अर्थ घर भी छोड देते हैं, धन भी छोड देते हैं परन्तु शल्य नहीं छोडते यही कारण है जो आप

बिना फंसाये फंस गए। अस्तु अब इस कथाको छोड़ो श्री रतनलालके वियोगसे इस समय उसकी अनाथ विधवा असहाया तथा हीना है अत. आपका जितना पुरुषार्थ हो उसे लगाकर उसके धनकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना तथा उन दोनों मा बेटी को सुरक्षित स्थानोंमें रहनेकी व्यवस्था करके ही अबकी बार नि.शल्य होकर ही आना। हम लोग अभी बहुत जघन्य श्रेणी के मनुष्य हैं और चाहते हैं कि उत्तम श्रेणीवालोंके आत्मीक रस का आस्वाद लेवें। सो स्वाद तो दूर रहा जो है उसीके स्वादसे वञ्चित रहते हैं। उतावली न करना, धीरतासे काम करना, यदि उसके कुटुम्बी आपत्ति करें तब पञ्चायतकी शरण लेना। श्रीयुत बाबू विलासरायजी तथा सेठी चम्पालालजी आदि वहा हैं आप कुछ भी भय न करना आप स्वय ३० वर्ष अदालतमें विताए, आप क्यों भीरु होंगे? राजगृही जानेका विचार पक्का है परन्तु कारण कूट मिलने पर ही तो कार्यमें परिणत होगा? आजकल सेठी प्रेमसुखजी ३ दिनसे ज्वरसे पीड़ित हैं कुछ नहीं खाया आज कुछ शान्ति है। शेष ब्रह्मचारी आपको इच्छा कार कहते हैं श्री कुञ्जीलालजी अच्छे हैं भगतजी कलकत्ते गये। यह न समझना हमे बिल्कुल नादान समझ लिया, आपका तो उनसे सम्बन्ध था इससे यदि दु ख हो तो आश्चर्य नहीं। परन्तु हम तो आपसे भी विलक्षण हैं जो बिना सम्बन्धके दुखी हैं।

—

श्रीयुत महाशय शान्तिलालजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

पत्र आया समाचार जाना। ये नवतत्त्व पर्याय दृष्टिसे देखे जावें तब भूतार्थ है। अतः उनको उन्हीं रूपसे जानना सत्यार्थ है। सामान्य रूपसे जीव एक है, परन्तु पर्याय दृष्टि से उसमें नाना पना असत्य नहीं, तात्विक ही है, तथा जीवके गुणोंमें जो विकार होता है उसके जानेसे गुणकी शुद्धकी अवस्था रह जाती है अभाव नही होता है जैसे जलमें पकका सम्बन्ध होनेसे मलिनता आ जाती है पकके अभावमें जलमें जैसे स्वच्छता आ जाती है एव आत्मामें मोहादि कर्म्मके विपाकसे विकृतावस्था हो जाती है। उस विकृतावस्थामें उसमें नानापना दीखता है उसका यदि उस अवस्थामें विचार किया जावे तब नानापना सत्यार्थ है। किन्तु वह औपाधिक है अतः मिथ्या है न कि स्वरूप उसका मिथ्या है? यदि स्वरूप मिथ्या होता तब ससार नाशकी आवश्यकता न थी अतः नय विवक्षासे पदार्थ को जानना ही ससारसे मुक्तिका कारण है, तथा वहाँ पर श्रीयुत माननीय कानजी स्वामी हैं उनसे आप सर्व निर्णय कर सकते हैं, अनुभवी मानव सर्व समाधान कर सकता है।

—

श्रीयुत महाशय सिंघईजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

पत्र आया समाचार जाने। इस वर्ष ता सागर नहीं आ सकता क्योंकि गर्मी पडने लगी है। अत. आदमी न भेजना। संसारमें मनुष्य प्राणी ही सर्वसे अधिक लालची और सर्वसे

अधिक वीतरागी हो सकता है। इस पर्याय ही में सर्व मार्ग खुल रहे हैं और इसमें सर्व मार्ग जानेकी शक्ति है। और अपने २ पुरुषार्थके तारतम्यसे यह जीव यथायोग्य स्थानके पात्र होते हैं। हमारा जो लिखना आपके प्रति है एक मोहका विकल्प है, क्योंकि वही होगा जो आप करेंगे और वही आप करेंगे जो होना है, और वही भगवानके दिव्य ज्ञानमें आया है। हम जो कुछ कल्पना करते हैं वही हमें संसार बन्धनमें डालती है। कार्य करनेसे असंख्य गुण विकल्प होते हैं जिनका इस पर्याय से आरम्भ होना असम्भव है, उन विकल्पोंको हम करते हैं और निरर्थक कर्म बन्धकर अनन्त संसारके पात्र होते हैं। जैसे विकल्प यह है सिघईजी अब शान्तसे आयु पूर्ण करते तो अच्छा था परन्तु यह होना क्या मेरे आधीन है? नहीं। आप चाहें तो अपने परिणामोंका शान्त कर सकते हैं कोई किसीका स्वामी नहीं, मोहमें अनेक कल्पनायें होती हैं। हमारी अन्तरंगसे यह भावना है जो आपके द्वारा १ चिरस्थायी कार्य हो जिससे २० गरीबोंके बच्चे हमेशा परवरिश पाते रहे। होगा वही जो होना है। पंडितको चेत्रमें रख लेवेंगे श्री कुंजीलालजीको दर्शनविशुद्धिः, श्री मुनीम कज्जूलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि अब सिघई जी को यही सुझावो जो कुछ दिनेशान्तर है व्यापार कम न करें किंतु आप लोगोंसे काम लेवें। श्री बाबूलालजीको सिखावें सिखानेसे तोता भी पढ़ जाता है और बिना सिखाये मनुष्य पशु हो जाता है।

—

श्री वीतरागाय नमः

होगा वही जो सर्वज्ञने देखा है या जो परिणमन जिस क्षेत्र और कालमें होगा वह सर्वज्ञके ज्ञान गम्य है वस्तु स्थिति ऐसी ही हैं परन्तु मोही जीवोंकी कल्पनामें ऐसी श्रद्धा होती नहीं, अतः नाना प्रकारकी चेष्टाकर कभी तो अपनेको रामबाण तुल्य समझता है और कभी रावणके चक्र तुल्य समझता है अस्तु इस गाथासे कुछ लाभ इस समय नहीं। यहांकी जो प्रस्तुत कथा है उसका दिग्दर्शन करा देना इस समय मेरे परिणमनमें भी आगया है और कथञ्चित मैं भी इसमें निमित्त हूं वातावरण किसीसे गुप्त नहीं। श्री कुंजीलालजी साहबने तो अपने पदसे स्तीफा दे दिया है। श्री सेठीजीने पहलेसे ही मध्यस्थ भाव धारण कर लिया है परन्तु यह भाव है अविरत सम्यग्दृष्टि कैसा इसे आप समझो। बाबू गोविन्दजी तो यहासे प्रस्थान ही कर रहे हैं। सम्भव है आपका शुभागमन फिर न भी हो, ऐसी अवस्थामें बहुतसे व्यक्तियोंको क्षोभ होनेकी सभावना है, न भी हो। अब मेरे जो विचार हुये सो वह यह हैं। कोई रहो या जावो सर्व द्रव्योंका परिणमन स्वाधीन है इससे मेरी तो यह भावना है जो हर्ष विषाद कारण निरर्थक है तथा अब आप लोग से यह कह देना उचित समझता हूं कि मेरे निमित्तसे यदि किसी प्रकारकी आपके प्रति अन्यथा वृत्ति हुई हो और वह आपको अनिष्ट रूपसे भान हुई हो तब आत्माकी दुर्बलता जान उसे दूर करना और आइन्दा आपकी इच्छा हो सो करना मेरे अर्थ

कोई प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नही, उदयाधीन सर्व होगा। अगर श्रीवीरने देखा है तो उनकी निर्वाण भूमिकी रजमस्तक पर लग्न होगी, नहीं देखा है तो कोईकी शक्ति नहीं जो इसे करा दे। इस लिखनेकी आवश्यकता मनमें हो सो वचनसे कहिए।

सर्व समुदायसे मेरा यह कहना है यहापर सम्भव है समाज में स्थान प्रयुक्त मनोमालिन्य हो जावे अत: शान्तिसे जहा अपने परिणामोंकी उज्ज्वलता हो वहा ही रहना श्रेयस्कर है,यह स्थान ही शान्ति लाभ करावेगा ऐसा नही, हस्ताक्षर न करनेका यह तात्पर्य है, जो मैं अधिकारी नही।

---

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य इच्छाकार,

वही जीव ससारमें सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदय मे कषायकी वासना न रहे, जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी निर्मलताके अर्थ होता है। जहापर वाह्य व्यवहार और उनके कारणों पर ही लक्ष्य है उनसे क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नही। अन्तसार बिना जो भाव होगा वह थोथा है।

---

श्रीयुत पतासीबाईजी योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिका लाभ उसी आत्मा को होगा जो अपने उत्कर्ष गुणको व्यर्थके अभिमानमें न आकर रक्षा करेगा। आजकल लोकोंने ( अज्ञानी ) प्रशसा की, फूले नही समाते। यह धर्मका वाह्य स्वरूप इसी अर्थ पालते हैं। आभ्यन्तर कलुषताके

अभावमें बाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नहीं। ऐसे मनुष्यों को उसकी बंध नहीं, गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योंकि गृहस्थ तो आतुर है जहा उन्हें कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते हैं और उसकी ऊपरी वैयावृत्त्य कर अपना भला समझते हैं। अथवा यों कहिये इन लोकोंको अपने पक्षमें कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोंको रक्षा करते हैं। सत्यस्वरूपमें उनके स्वेच्छाचारिता का घात है। हम तो एक कोणमें हैं अत. पार्श्वप्रभुकी चरण सेवा ही इससे इष्ट की है। यहां पर उन प्रलोभनोंकी त्रुटी नही, यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गंध नही आई और ऐसे आडम्बरोंमें शान्ति काहे की ? घर छोडा, दुनियांको घर बना लिया, धिक इस परिणतिको। इसका अर्थ लल्लूसे पूछना वह चिट्ठीका अर्थ ठीक कहेगा। उनसे भी दर्शनविशुद्धि वह अब हमसे दूर हैं। श्री सुरजमलजीका हम बहुत उपकार मानते हैं जिन्होंने यह धर्मायतन बना दिया। श्री बिलासरायजी से कहना ससारकी दशा देखकर भी आप अपने समयका सदुपयोग नहीं करते !

श्री पनासीबाई यदि आत्म शान्तिको इच्छा है। तब यथार्थ रूपसे स्वात्म भावनाको करना और कायरताको आश्रय न देना। केवल बाह्य त्यागमें अपनी स्वात्म परिणतिको लगा न देना।

—

श्रीयुत बैजनाथजी योग्य दर्शनविशुद्धि·

आपकी शारीरिक व्यवस्था ठीक होगी। अब अवस्था पक्के पानके सदृश है, जब तक काल-पवनसे बची है तभी तक है। अतः जहाँ तक बने, चाहे कलकत्ता रहिये चाहे मद्रास रहिये, मूर्छाको कृश करना चाहिये, क्योंकि आप ज्ञानी हैं। अत अब कुल समय उस अस्त्रसे कर्म शत्रुके छेदन करनेमें विम्लब नहीं करना चाहिये। धर्मशालाके प्रबन्धमें आप न पडिये क्योंकि जहाँपर मनुष्योंके हृदयमें अधिकारकी प्रभुता आ जाती है, वहाँपर न्यायकी इच्छा करना बालूसे तेल निकालनेके सदृश है। आपने ससारके प्रबन्धका ठीका नहीं लिया है मुख्यतया अपनी आत्माकी कल्याण जननी जो रत्नत्रयी है उसकी सेवा करिये, ससारमें जो प्राणी हैं उनकी अनुकूलता प्रतिकूलतापर आप अपने उपयोगका दुरुपयोग नहीं करिये, सर्व प्राणियोंके उदयाधीन उनकी व्यवस्था प्रकृति स्वयमेव कर देती है। तटस्थ रहने में ही सुख है। जैन-धर्मका मूल सिद्धान्त है वही आत्मा सुखपूर्वक शान्तिलाभ करनेका पात्र होगा, जो इनपर पदार्थोंके प्रपचसे पृथक होकर आत्माकी ओर परामर्श करेगा। अब आप यह कहें कि यह पत्र क्यों लिखा? इसका यही उत्तर है कि जिस चक्रमें आप हैं हम भी तो उसीमें हैं! विशेष विचारके अर्थ कुछ दिन शान्तिसे अनुभव करनेकी आवश्यकता है। मन्दिर आपके प्रयत्नसे बन रहा है और प्राय. अच्छा ही बनेगा। मेरा इतना

कहना है कि नीचेकी भूमि ऐसी बनाना चाहिए जिसमें कीड़ियाँ बिल न बना सकें।

आपकी दृष्टि व्यापक है, किन्तु उस व्यापकमें पहिले नं० सराक जातिका दूसरा धर्मध्यान आश्रमका तीसरा नम्बर स्याद्वाद विद्यालय फिर यदि आयु बची रही तो कहेंगे।

---

*श्रीयुत महाशय रामेश्वरजी योग्य दर्शनविशुद्धि*

पत्र आया समाचार जाने। आपने लिखा आत्मा अनेक दीखता है, जैसे सीपमें चाँदी दीखती है मरुस्थलमें जल दीखता है, जल और चाँदी नहीं है, पर दीखते हैं जरूर। जैसे—यह भ्रम है वैसे ही आत्मा नाना दीखता है यह भी भ्रम है, इसपर भी विचार करो। सीपमें चाँदीका दिखना भ्रम है, पर चाँदीमें चादी दिखना तो भ्रम नहीं है? एवं मरुस्थलमें जल देखना भ्रम है, परन्तु जलमें जल देखना तो भ्रम नहीं, एवं एकमें अनेक देखना भ्रम है, अनेकमें अनेक देखना भ्रम नहीं। इसी प्रकार यावत् ससारके जीव हैं उन्हें एक मानना या अशुद्ध और अज्ञानी होते हुए भी उन्हें शुद्ध और ज्ञानी मानना भ्रम है। पुत्रकी आत्माको अपनी मानना ये सर्व भ्रम है शरीर जड है, नश्वर है, अशुचि है उसे आत्मा मानना नित्य मानना यह भ्रम है। जब तक यह भ्रम नहीं जावेगा तब तक ही संसार है, संसारका मूल कारण अज्ञान है। जब तक हमारी यह अज्ञानता नही जावेगी, हम ससार परिभ्रमण कर नाना

योनियोंमें नाना प्रकारके दुखके पात्र होंगे। परब्रह्मका यही तो अर्थ है, जो शुद्ध है बुद्ध है आनन्द-स्वरूप है सद्रूप है यह विशेषता ही यह जनाते हैं जो इससे भिन्न जितने आत्मा हैं, वह अभी इस रूप मे नहीं अर्थात् अशुद्ध है, रागादि मान हैं, अबुद्ध हैं, अज्ञानी हैं अर्थात् ससारी आत्माओंका ज्ञान मोहयुक्त होनेसे अज्ञान स्वरूप है, यह नहीं मान लेना कि जड है। आनन्दात्मक सुखसे भिन्न विषयजन्य पराधीन सुख है, परमार्थ से दु ख रूप हो है, असद्रूप है। इसका अर्थ यह नही मानना कि सर्वथा असत् है कितु जो पर्याय उनके हैं उस रूप नहीं रहते फिर इस ससार अवस्थावाले यह जो आत्मायें हैं उन्हे एक मान लेना कहाकी बुद्धिमत्ता है? रक और राजा मनुष्यपनेसे समान हैं, सर्वथा समान माननेसे अनर्थ हो जावेगा। इसी तरहसे ससारी जीव और परमात्मा जीवत्वकी अपेक्षा एक हैं किन्तु स्वरूपकी अपेक्षा एक नही हैं। स्त्रीत्वापेक्षया माता पुत्री स्त्री एक हैं न कि सर्वथा एक हैं, अन्यथा उनमे पूज्यत्वादि के व्यवहारका लोप हो जावेगा। अत. हम लोग वर्त्तमानमें जिस रूप में है उसे सर्वथा मिथ्या मानना सर्व व्यवहार और परमार्थका लोप करना है और आपको यदि इसीमें सन्तोष है कि एक ही परब्रह्म है, तब इसका विचारकर उत्तर दीजिये वह नाना क्यो हुआ। माया द्वारा हुआ तब माया क्या इससे भिन्न है? तब दो तत्त्व हो गये हैं। यदि अभिन्न है, तब नाना पनेका उत्पादक क्या मनका पक्षपात और श्रद्धासे पदार्थ नहीं

बदल सकते। चन्द्रमा एक है जलमें नाना दीखते हैं परन्तु वे चन्द्रमा नहीं हैं वे तो प्रतिबिम्ब है और जलके निमित्तसे हुवे जैसे दर्पणमें मयूर दिखता है वह दर्पण ही है मयूर नहीं। यदि दर्पणका परिणमन नही मानोगे तब नेत्रोंके दुवारा क्या दीखता है ? इत्यादि फिर। आप अपने पत्रोंका नकल रखना और हमारे पत्र भी रखना। आप विशेष स्थानमें हैं विद्वानोंसे इस विषयकी शंका करके निर्णय करें "एक शंका यह है—'एकोह बहुस्था' इस श्रुतिका अर्थ क्या है इस बहुत होनेके पहले कुछ कष्ट था ? जो नाना होनेकी इच्छा की अथच जब नानापना मिथ्या है तब कौनसा प्रबलतम कर्मका विपाक आया जो इस नश्वर मिथ्या अनेकपनेकी वाञ्छा हुई।

---

श्रीयुत महाशय मूलशंकरजी योग्य दर्शनविशुद्धि

शास्त्रके द्वारा पदार्थोके स्वरूपका ज्ञान होता है, सामायिकादि क्रिया बाह्य हैं अंतरङ्गकी निर्मलताका कारण आत्मा स्वयं है, अन्य निमित्त कारण है। किसीके परिणाम किसीके द्वारा निर्मल हो ही जावें यह नियम नहीं। हां वह जीव पुरुषार्थ करे और काल लब्धि आदि कारण सामग्रीका सद्भाव हो। निर्मल परिणाम होनेमें बाधा भी नहीं परन्तु इसीका निरन्तर ऊहापोह करे और उद्यम न करे तो कार्य सिद्धि होना दुर्लभ है।

---

श्रीयुत महाशय योग्य दर्शनविशुद्धि.

निर्दोष वक्ता तो वीतराग सर्वज्ञ है अतः सहसा कोई कार्य करना अच्छा नहीं, दिगम्बर मंदिरमें जाना परम हितकर है परन्तु प्रवचनमें भी जाना अच्छा है। मोहके उदयमें बड़ी २ भूलें होती हैं, यह तो कुछ भूल नहीं। जबतक अपनी परिणति विशुद्धरूपा न होगी कल्याणका पथ अति दूर है। अत. जहां तक बने अपनी भूल देखो परकी भूलसे हमें क्या लाभ। आप एक दृष्टिसे न देखिये क्योंकि पदार्थ अनन्त धर्म्मात्मिक है, गृहस्थ ही तो है अणुव्रती तो नहीं ऐसी भूलें देखोगे तब मेरी समझमें इस समय वक्ता मिलना दुर्लभ है सामान्य बात न समझना, अच्छे २ जो वक्ता हैं वे भी ऐसी २ भूलोंसे लिप्त हैं क्रोध लोभ मान तो प्रत्यक्ष हैं माया भी है। केवल इस समय कल्याणका मार्ग जो मनुष्य सरलभावसे अपनी प्रवृत्ति करेगा उसीका होगा। संसारकी समालोचना किस कामकी, अपनी समालोचना करो। वही बहुत है उसीमें काल और शक्ति पूर्ण हो जावेगी।

---

श्रीयुत महाशय मूलचन्दजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया समाचार जाने। कल्याणका उत्पाद आत्मामें होता है और उसमें वही कारण पड़ता है। कुंभकार जैसे मृत्तिकामें घट बनाता है इस प्रकार कोई निमित्त कारण उसमें कल्याण कर्त्ता नहीं। इसका कारण यह है जो मट्टी अचेतन

है उसको कुंभकार अपनी इच्छाके अनुकूल प्रयत्न द्वारा घंट बना लेता है। यहाँ चेतन पदार्थ स्वय अभिप्राय वाला है, उसकी जैसी अभिरुचि होगी उसके अनुरूप ही कार्य्य होगा। अतः हम स्वयं अपने कल्याणके कारण हैं। मेरी चिट्ठी तो कोई वस्तु नहीं बड़े २ महर्षियोंके शास्त्रोंका अध्ययन कर लोक कल्याण स्पर्शके अपात्र रहते हैं। और बहुतसे ऐसे हो गये जो शास्त्रके ज्ञाता न होकर भी भेद ज्ञान द्वारा कल्याणके पात्र हो गये। अतः मेरी प्रबल धारणा है जो हम स्वयं अपने कल्याण और अकल्याणके कर्त्ता हैं।

---

श्रीयुत महाशय बाबू गोबिन्द प्रसादजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

रतनलालजीका असामयिक स्वर्गवास अति दुःखका कारण सुननेवालोंको हुवा। फिर आपकी तो कथा ही दूसरी है, सर्व से बलवान दुःख तो उसकी गृहिणी और बच्चोंको हुवा होगा। आप जहातक बने उन्हें अच्छी तरह सान्त्वना देना क्योंकि आप उनके हितैषी है। विपत्तिमें शान्ति देना उत्तम पुरुषोंका काम है। संसार दुःखमय है, वही पुरुष इसमे सुखी हो सकता है जो मूर्छा छोडे। परन्तु वह विचारी अनाथ विधवा क्या कर सकती है? उसकी रक्षा करना मेरी समझमें एक महान पुण्यके बराबर है। विशेष क्या लिखैं हमारा आप कोई विकल्प न करना, योग्यता मिलने पर राजगृही जावेगे। हमारे तो श्री पार्श्वनाथ और वीर प्रभुमें कोई अन्तर नहीं।

---

श्रीयुत महाशय बाबू गोबिन्द प्रसादजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

हमने पत्र दिया है हमारा विचार राजगृही जानेका है परंतु अभी जाना कठिन है अतः आपको यदि अवकाश हो तो देख जाना। ससार दुःखमय है इससे उद्धारका उपाय मोहकी कृशता है उसपर हमारी दृष्टि नहीं। दृष्टि क्यों हो, निरन्तर पर पदार्थोंमें रत हैं अतः तत्त्वज्ञान भी कुछ उपयोगी नहीं। केवल तत्त्वज्ञानका उपयोग, हमारी प्रतिष्ठा रहै इसीके लिये है, व्रतादिकका उपयोग पर पदार्थकी मूर्च्छा जाए बिना कुछ नहीं। सेठ कमलापतिका कोई समाचार नहीं, अति लोभी, एक पोस्ट कार्ड तक नही दिया। आपकी उनपर बड़ी श्रद्धा है तथा उनकी आप पर है अत. एक पत्र डाल देना। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा आप हमारी चिन्ता न करना क्योंकि उदयाधीन सर्व सामग्री मिलती है आपका आना तब होगा जब वीर प्रभुने ज्ञानमें देखा होगा। कहनेसे कुछ नहीं अत. नि.शल्य होकर वही सानदसे स्वाध्याय आदिमें समय बिताइये यही कल्याण का पथ है। देखिये उदयकी बात, हमारे मनमें यह आई थी जो आपसे ताजा घी मगावें, परन्तु मनने कहा क्यों लिखते हो! पर आपने भेज दिया, यह क्या है उदय ही तो है? यह सर्व होकर भी मनुष्योंकी यथार्थ प्रवृत्ति न हो यही आश्चर्य है।

श्रीयुत लालचन्दजी से इच्छाकार, आप सानद नित्य नेममें उपयोग लगाइए यही पर्यायका लाभ है।

---

श्रीयुत महाशय गोबिन्द बाबू योग्य दर्शनविशुद्धि·

बन्धुवर, आप रञ्चमात्र विकल्प न करना आपको मेरी प्रकृत्तिका पता है फिर आप लिखते हैं आपका क्षमा मागना (     ) का कारण है नहीं, मेरी बाल्यावस्थासे ही किसी भी प्राणीके प्रति स्वप्नमे द्वेष बुद्धि नहीं रहती फिर आप तो हमारे धर्मात्मा स्नेही सज्जन है प्रत्युत आपके बिना मुझे यहा बहुत ही खेद सा रहता है मैं उनसे प्रसन्न रहता हू जो अन्तरग खुश दिल रहते है अब आप मेरी तरफसे काई भी कणिका शल्यमयी न रखिये और जहा तक बने धर्म ही अपना कल्याण कारी है इसी ओर लक्ष्य रखियेगा मैंने ब्रह्मचारियोंसे पूछा तब निम्न पुस्तकें उनने मागी। समयसार सटीक ब्रह्मचारी भगवानदास और ब्र० आत्मानन्द, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ब्र० कमलापति। १ पत्र आप इस पतेसे डाल देवें, वी० पी० का पता ईसरी मगलसेनके नाम लिख देवें। मोक्षमार्ग मिलता नही अत नहीं लिखा। और पुस्तकें आपके आनेपर मँगावेंगे। बादाम प्राय. मैं जबसे आम आप नही खाता अतः हमारे व आपके व जगत पूज्य पार्श्व प्रभुके चरण समर्पितका रञ्ज न करना फिर भी हम भी तो आखिर छद्मस्थ अल्पज्ञ प्रमादी जीव हैं यदि किसी प्रकारकी त्रुटि हो जावे तो उसे अनात्म धर्म जान, वस्तु मर्यादा जान दृढ ज्ञानी होना, न कि खेद करना। आप जानते हैं आज तक हम और आप जो इस ससारमें भ्रमण कर रहे है उसका मूल कारण यही प्रमाद दशा है, यदि हम प्रमादसे

अन्यथा लिख देवें तब क्या यह लिखना श्रेयस्कर होगा, कदापि नहीं। अथवा आप लिख जावें अथवा कोई लिख जावे, प्रशसनीय नहीं। जब आप यहा शुभागमन करेंगे मैं सर्व समाधान कर दूंगा। और भी लिखता हूं मेरी ऐसी प्रकृति है जो बिना देनेवालेकी मर्जीके बिना तथा अपनी आवश्यकताके बिना रुपया व्यय करना नही जानता। स्याद्वाद विद्यालयसे अन्त प्रेम है अत. पुनरुक्ति आदि आपसे हो गई न कि भ्रम। मेरे पास अब कुल १०००) था उसमें ७००) और स्याद्वाद विद्यालयमें देने का निश्चय किया है केवल पोस्टसे निकालनेका विलम्ब है, ३००) रह गये हैं इसीमें स्वकीय आयु को पूर्ण करूंगा। यदि न्यूनता पड़ेगी, आप सज्जन है मुझे किञ्चित भी विकल्प नही। शेष आपके सर्व समाचार लोकोंसे कह दिए आपका पत्र आने पर सन्तोष होगा।

---

श्रीयुत महाशय बा० गोविन्दलालजी योग्य इच्छाकार,

आप सानन्द होंगे, यह एक पद्धति लिखनेकी है वास्तव आनद तो जब होगा जब यह रागादि शत्रु दूर हों, इनके सद्भाव में काहेका आनन्द! जिस रोगको हमने पर्याय भर जाना और जिसके अर्थ दुनियाके नामी वैद्य हकीमोंको नब्ज दिखाया तथा उनके लिखे या बने या पिसे पदार्थोंका अनुपान किया और कर रहे हैं वह तो वास्तवमें हमारा रोग नही, जो रोग है उसको न जाना और न उसके जाननेकी चेष्टा की और न उस

रोगके वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट रामबाण औषधका प्रयोग किया यद्यपि उस रोगके मिटनेसे वह रोग सहज ही मिट जाता है जैसे सूर्योदयमें अंधकार। अस्तु, अब मैं यहासे जेठ सुदी १ वा २ को चलूंगा कोईको मेरे पास भेजनेकी आवश्यकता नही, मेरा उदय ऐसा ही कहता है जो सानन्द रहो और किसी को अपनेसे कष्ट मत पहुचाओ तथा पर्यायकी सार्थकता करो यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। श्री चन्दाबाईसे मेरा इच्छाकार कहना मैं तो उन्हें बहुत सज्जन और धर्मात्मा जानता हू। यद्यपि मेरा विचार जल्दी आनेका न था परन्तु ऐसा ही होना था, निश्चित सिद्धान्त तो यही है, आजका यह भाव है। श्री छोटे-लालजीको इच्छाकार तथा सर्व ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। जो मनुष्य अपनी आलोचना करेगा वह ससारसे पार होगा जो परको समालोचनामें अपना समय लगावेगा वह ससार भ्रमणका पात्र होगा, विशेष क्या लिखें।

---

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी योग्य दर्शनविशुद्धि.

अपरञ्च हमारा आना जाना पराधीन हो गया, यहा से मैंने कई बार आनेका प्रयत्न किया परन्तु कारण कूटके न मिलने से नहीं आ सका। अब गर्मी बहुत पडने लगी है यहांपर केवल ४ बजे तक गर्मी रहती है। इससे यह विचार किया जो जेठ भर यहीं रहना उत्तम होगा क्योंकि वहा की अपेक्षा गर्मी कम पडती है। आज प० नन्हेंलालजी वैद्य आए हैं। २०) मासिक

का १ मकान भाडा लेनेका विचार है नन्हेंलालको भेज देवें जैसे आश्रमवाले कहें सो लिखना आश्रमवासी सम्पूर्ण ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार। श्रीयुत प्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धिः

—

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजीसे दर्शनविशुद्धि·

पत्र आया समाचार जाने, आपकी जो श्रद्धा है उसके हम स्वामी नहीं परन्तु हमारी श्रद्धा है जो किसीके उपदेशका किसी पर प्रभाव नहीं पडता है, यदि ऐसा था तब अनन्त बार समवसरणमें गए और अनन्तबार द्रव्यलिंग धारण कर ग्रैवेयिक गए परन्तु आत्म कल्याणसे बञ्चित रहे, अतः मेरे निमित्तसे आप आनेकी चेष्टा कर रहे हैं यह मेरी बुद्धिमें नहीं आता है। बच्चों की दयासे वहा पर हैं यह भी बुद्धिमें नहीं आता है। जिस मोहसे ठहरे हो उसका नाम भी नहीं। अपने मोह भावसे सर्व चेष्टा है, बच्चोंकी दया नही, अपने परिणाममें जो उसके निमित्तसे अनुकम्पा हुई है उसके दूर करनेकी सर्व चेष्टा है।

—

श्रीयुत महाशय गोविन्दरामजी योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द आ गए। उदयाधीन सामग्री भी मिल गई, परन्तु गर्मीका प्रकोप सर्वत्र है, सबसे बडा सुख इस बातका हुआ जो चित्त अब क्षुब्ध नही होता। हमारा यह विचार यहा आनेसे हुआ जो श्री तीर्थराजको छोड गृहस्थोंके सम्बन्धमें रहना अच्छा नहीं। क्योंकि ममत्व ही बन्धका जनक है यहा तक

निश्चय किया, चाहे आप लोग रहो या न रहो भाद्र मास तक तो ईसरी ही रहना ।

—

श्रीयुत बाबूजी योग्य दर्शन विशुद्धिः

दुःख तो कल्पनामें है, कल्याण आत्मा में है। मैं स्वय अकिंचित्कर आपसे पुरुषोंका उपकार कर सकता हूं ? फिर फागुन बदी १ को यहा आऊंगा ही। श्री प्रेमसुखजी से दर्शनविशुद्धिः। कलकत्तेसे कोई समाचार आया नही। गृहस्थका संग दुःखद है।

—

श्रीयुत महाशय बाबूजी योग्य दर्शनविशुद्धिः

सानन्द स्वाध्याय होता होगा, स्वाध्यायका फल रागादिकों की उपशमता है। यदि उपशमता तीव्रोदयसे न भी हो तब मन्दता तो अवश्य ही होना चाहिये। मन्दता भी न हो तो विवेक अवश्य होना चाहिए। यदि विवेक भी न हो तब तो स्वाध्याय करनेवाला जाना क्या लाभ स्वाध्यायसे लिया, जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको निरन्तर अवनतकर तात्त्विक सुधार करनेका प्रयत्न करता है वही इस व्यवहार धर्मसे लाभ उठा सकता है जो केवल ऊपरी दृष्टिसे शुभोपयोगमे ही सन्तोष कर लेते हैं वे उस पारमार्थिक लाभसे जिससे चिरकालीन शान्ति मिले वंचित रहता है जो परिग्रह वर्त्तमानमें आकुलता का उत्पादक है यदि व्यवहार धर्मसे वह मिल गया तब

मेरी समझमें आकुलताके सिवाय क्या लाभ उठाया? यदि अज्ञानी जीव इससे सन्तोष कर लें तब आश्चर्य नहीं परन्तु जो स्वाध्याय करके तत्त्वज्ञानके सम्पादन अर्थ निरन्तर प्रयास करते है यदि वे मनुष्य सामान्य मनुष्योंकी तरह भी इसीमें सन्तुष्ट हो जावें तब आश्चर्य है। जिन्होंने शान्तिके ऊपर ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है उन्हे इन वाह्य क्षेत्रोंमें उलझना उचित नहीं। अपनी लालसाको छोड़नेके अर्थ जिन जीवोंने त्यागधर्म को अंगीकार किया फिर भी उन्हींकी तरफ यदि लक्ष्य रक्खा तब उस जीवने उस त्यागमे क्या लाभ उठाया? क्योंकि त्यागका अर्थ आकुलताका अभाव है। यदि वह न हुई तब उस त्याग से क्या लाभ? जितने कार्य्य ससार में मनुष्य करता है उसका लक्ष्य सुख की ओर रहता है और सुखोत्पत्ति वास्तव रीतिसे विचार किया जावे तब त्यागसे ही होती है इसीसे जैनधर्मका उपदेश त्यागको लक्ष्य करके ही है यदि इसपर लक्ष्य न दिया तब वह मार्मिक ज्ञानी नही, इसके ऊपर जिनकी दृष्टि रही वही त्याग कर सफल प्रयत्न हो सकते है। हम जेठ बाद आवेगे।

---

श्रीयुत वैद्यराजजी दर्शनविशुद्धिः

चिरंजीवी पन्नालालको शीघ्र आराम हो यही भावना है। अन्तरगमें श्री वीर प्रभुकी भक्ति ही निरोगताका कारण है। श्रीयुत बिलासरायजी साहब योग्य दर्शन विशुद्धिः! आपने

सर्व कुछ व्यवस्था देखी अब सानन्द सर्व तरफसे ममत्व त्याग अपनेमें ममत्व करिये। जो नाटक देखने था देख लिया, कोई भी विकल्प न करिए यही इस संसारमें होता है। किसीने किसीसे कहा कि ऊंटकी गर्दन बांकी होती है यानी टेढ़ी होती है, सुननेवालेने उत्तर दिया उसका कौन अंग सूधा होता है? यही संसारकी दशा है, यही श्री विलासरायजीको सुना देना।

—

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजी दर्शनविशुद्धि,

भैया, संसारसे उदासीनता श्रेयस्करी है; परन्तु आकुलता करना हितकारिणी औषधि नहीं। जब हमारे जैनधर्मकी दृढ़ श्रद्धा है तब हम तिर्यंच और नारकी क्यों होंगे, हमारी बुद्धिमें नहीं आता। आपने लिखा हमसे कुछ पुरुषार्थ नहीं होता। आप पुरुषार्थसे क्या समझ रहे हैं, सो तो आप जानें। क्या घर छोड़कर हम लोगोंके सदृश शिखरजी रहनेमें पुरुषार्थ मानते हैं? या पण्डित महानुभावों की तरह ज्ञानार्जन कर जनताको उपदेश देकर सुमार्गमें लगानेके प्रयास को पुरुषार्थमें गणना करते हो? या दिगम्बर भेषको पुरुषार्थ समझ रहे हो? मैं विरोध नहीं करता; किन्तु मैं तो सच्चा पुरुषार्थ उसे समझ रहा हूं जो हमारे उदयके अनुसार रागादिक हों और हमारे ज्ञानमें भी वे आवें तथा उनकी प्रवृत्ति हममें हो जावे, किन्तु हम उन्हें कर्मज भाव समझकर यदि इष्टानिष्ट कल्पनासे अपनी आत्माकी रक्षा कर सकते हैं, अर्थात् इष्टानिष्ट कल्पना हमारी श्रद्धामें नहीं होती,

तब तो उस जीवकी भव्य जीवमें गणना करते हैं। यदि कोई यह कहे कि सम्यग्दृष्टिके इष्टानिष्ट कल्पना नहीं, तब उसके जो शुभोपयोगकी क्रियाओंमे प्रवृत्ति तथा अशुभ क्रियाओंसे निवृत्ति क्यों होती है ? और निन्दा-गर्हा किस कार्यको करता है ? मेरी तो इसमें यह सम्मति है कि सम्यग्दृष्टि इन क्रियाओका कर्त्ता नही, किन्तु उस अवस्थामें यह परिणमन होता है, होवे। स्वामित्वके अभावसे पूर्वोक्त कार्यो का सद्भाव नहीके तुल्य है। उदय मात्र भव-बन्धका जनक नहीं, उसके अन्दर स्निग्धता ही बन्ध-जनिका है। यही श्री समयसारमें कहा है—

लोकः कर्म ततोस्तु सोस्तु च परिस्पंदात्मकं कर्म तत्
तानि-अस्मिन् करणानि सन्तु चिदचिद्वापादनं चास्तु तत्।
रागादिन्युपयोगभूमिमनयद्वाज्ञानं भवेत् केवलम् ;
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दगात्मा ध्रुवम्।

इसका यह तात्पर्य नही कि हम स्वेच्छाचारी हो जावे, क्योंकि जहापर प्रतिक्रमणको विष कहा है वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत नही हो सकता। हम लोग अनादिकालसे पराधीन हो रहे हैं, अत परसे ही आत्म कल्याणकी उत्पत्ति चाहते हे। मैं तो अपनी बात कहता हू। सम्भव है आप लोगोंको अन्यथा भासमान हो , परन्तु मेरी तो यह दृढ़ श्रद्धा है। परके द्वारा किया कोर्हा कल्याण-पथका कारण नहीं जैसे कोई यह माने कि मैंने धन दिया तब क्या पुण्य न हुआ ? अब आप उससे प्रश्न कीजिये कि क्या भाई, धन तेरी वस्तु है जो उसे देनेका अधि-

कारी बनता है ? क्योंकि तेरा स्वरूप चैतन्य है और धन अचै-तन्य है ? यदि उसे तू अपना समझता है तब तो चोर हुआ। चोरीके धनसे पुण्य कैसा ? इसी प्रकार शरीर भी पर द्रव्य है तथा मन वचन भी पर है। इनसे कल्याण मानना कहा तक उचित है ? कल्याणका मार्ग तो केवल आत्म-परिणाम है। जहा तक योगका व्यापार है वहां तक परम यथाख्यात चारित्र नही। अत. जहां तक बने, परके जानने और देखने की इच्छाको छोड देखना जानना ही श्रेयस्कर है। क्या कहे, यह पराधीनता ऐसा प्रबल रोग है जो ससारसे मुक्त नही होने देता। अत चाहे घर रहो, चाहे बनमे रहो, यदि इसके वश हो तब तो कुछ सार नही। यदि इस पर विजय प्राप्त कर लो, तब कहीं रहो, पौबारा है। यदि आप यहा आओ, तब हमें कोई कष्ट नही। परन्तु शीतलप्रसादजी तथा लाला हुकमचन्दजी को अवश्य लाना। विशेष क्या लिखें। सर्व मण्डलीसे धर्मस्नेह कहना मैंने दीपमालिका तक पत्र देनेका त्याग कर दिया था। यही देवीको लिखा था। परन्तु आपका व्यग्र पत्र देखकर उत्तर देना पडा। लाला विश्वम्भरसहाय तथा लाला बाबूलाल तथा लाला धर्मदासजी प० खचेडूमल आदि सर्वसे दर्शनविशुद्धि आपके आनेपर सब समाचार कहेंगे। आपके गाममें श्री महा-देवी एक रत्न हैं। उसके साथमे धर्म चर्चा बहुत लाभ दायक है। हमारा उनसे धर्मस्नेह कहना।

---

**श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्दजी, योग्य दर्शन विशुद्धिः**

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। सानन्द स्वाध्याय कीजिये और उसके फल—रागादि मूर्च्छाकी न्यूनता—पर निरन्तर दृष्टि रखिये। आजतक हमने धर्मसाधन बहुत किया, परन्तु उसका प्रयोजन जो रागादि की निवृत्ति था उस पर दृष्टी नहीं दी। फल यह हुआ कि टस से मस नहीं हुए। अब गाड़ी लैन पर आ गई है। चाहे धीरे धीरे चले, परन्तु लैन न छूटे यही प्रयास करना मुख्य है। रागादि निवृत्तिके अर्थ ही चरणानुयोग है। केवल मौखिक पदार्थके निरूपणसे प्रयोजन की सिद्धि नहीं। सिद्धिका प्रयोजन कषायकी कृशता है। मन्दता से लाभ नही, लाभ तो अभावमें है। दस रुपयेका मनिआर्डर भेजा है, सो ले लेना, और विकल्प न करना। और यदि विकल्प हो तो अज्ञान ज्ञान दूर करना। विकल्प ज्ञान ही का छेदना तो इष्ट है। हमने वैशाख सुदि १५ तक पत्र न देने का नियम कर लिया है। सर्व मण्डलीसे धर्म प्रेम। एक बार वर्षामें यहा आनेका प्रयास करना और भगतरायजी को भी लाना। लाला हुकमचन्द, प० शीतलप्रसाद, लाला विश्वम्भर सहाय, लाला खचेडूमल, लाला बाबूलाल, प० धर्मदास आदि सर्व सज्जनोंसे धर्म प्रेम। यदि आप हित चाहते हैं, तो विकल्प न कीजिये। केवल, परसे परत्व बुद्धि हो—यह भेद ज्ञान करना।

—

श्रीयुत त्रिलोकचन्दजी दर्शनविशुद्धि।

बहुत दिनसे पत्र लिखनेकी इच्छा थी। परन्तु अब अन्तिम निर्णय यही है कि प्रत्येक कार्यके अन्दर यदि उसके रागादिक उपद्रव दूर होते हैं, तब तो वह मोक्षोपयोगी है; अन्यथा निरर्थक है। द्रव्यलिंगीका शुभोपयोग भी उस मार्गका बाधक है। और श्री रामचन्द्रजीका रावणके साथ संग्राम भी कथंचित् साधक हो गया। विशेष लिखना यही है। सर्व उपद्रवोंकी जड रागादि भाव हैं। जिसने इन पर विजय पा ली वही भगवान है। मण्डली को सुना देना।

---

श्रीयुत प्रशम महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि।

पत्र आया। समाचार जाने। शारीरिक व्याधि असातोदयमें होती है। किन्तु यदि उसके साथमें अरति-प्रकृतिका उदय बलवान हो, तब वह व्याधि विशेष दु:खजनक होती है। यदि विशेष बलवान न हो, तब विशेष बाधक नहीं होती। विशेषसे तात्पर्य—मिथ्या दर्शनके साथ अरति विशेष बलशाली है। वास्तवमें शरीरमें जो रोग है, वह दु:खदायी है ही नहीं। हमारा शरीरके साथ जो ममत्व भाव है, वही तो मूल जड वेदनाकी है। इसके दूर करनेके अनेक उपाय हैं; पर दो उपाय अति उत्तम हैं—एकत्व भावना और अन्यत्व भावना। इनमें एक तो विधि-रूप है और एक निषेध-रूप। वास्तवमें विधि और निषेध रूपका यथार्थ परिचय हो जाना ही तो सम्यग् बोध है। परसे भिन्न

और निजसे अभिन्न ही तो शुद्ध वस्तु है। इसीको समयसारमें स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कितने सुन्दर पद्यमें निरूपण किया है—

अहमिक्को खलु शुद्धो दंसण णाण मइओ सदारूवी ;
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु मित्तं पि। ३८

निश्चय कर मै एक हू, शुद्ध हू, ज्ञान-दर्शनात्मक हू, सदा काल-रूपी हूं। इस ससारमें अन्य परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है, परन्तु हां, मोह, तेरी महिमा अचिन्त्य और अपार है, जो ससार मात्रको अपनेमे ग्रास करना चाहता हैं। नारकीकी तरह मिलनेका कारण नही, इच्छा ससार-भरका नाज खानेकी है, यही मोहकी विलक्षणता है। जो बावले कैसे प्रलाप निरन्तर करता रहता है—हाथ कुछ आता नहीं, अतएव स्वामीने भावक भावके दूर करनेके अर्थ कैसा सुन्दर और हृदयग्राही पद्य कहा है—

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ;
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्सवियाणया विंति।३६

माह मेरा कुछ भी सम्बन्धी नहीं। एक उपयोग हा मैं हूँ। समयके ज्ञाता उसे निर्मोही जानते हैं। जिसके मोह चला जाता है, उसके ज्ञेय-ज्ञायक भावका विवेक अनायास हो जाता है। उसीको समझाने अर्थ स्वामीजीने निम्न पद्य कहा है—

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ;
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्सवियाणया विन्ति।३७

इत्यादि अनेक पद्योंसे स्वामीने इस मोही जीवके सम्यग् बोधके अर्थ प्रयास किया। परमार्थसे स्वामीने, जो मगलाचरण अनन्तर दो गाथा हैं उसमे, समयसारका सम्पूर्ण रहस्य कह दिया है—

जीवो चरित्त दंसण णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण;
पुद्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयम् ।२

जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें स्थित हो रहा है, उसीको तुम स्वसमय जानो, और इसके विपरीत जो पुद्गल कर्म प्रदेशो मे स्थित है, उसे पर समय जानो। जिसकी ये दो अवस्थाएँ हैं, उसे अनादि अनन्त सामान्य जीव समझो। इसी भावको लेकर स्वामीजीने 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग.' कहा है और इसी भावको लेकर स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा है--

सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः ;
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ।

इस गाथाके आभ्यन्तर द्वादशागका सार है। इसकी महिमा अनिवचनीय है। लिखनेकी सामर्थ्य नही, अत यही पूर्ण करता हूँ। बाबाजी महाराजसे क्या कहूँ, उनका स्मरण ही हमे कल्याण-पथका पथिक बना रहा है। महाराजका मौनका अभ्यास अच्छा है। आपको क्या लिखूँ, परन्तु हमारा मौन तो वचन योगके अभावको मौन समझ रहा है, किन्तु जब तक कषायोंकी वासनाका निरोध न हो, तब तक वचनयोग और मनोयोगका निरोध होना असम्भव है। अन्तर्जल्प होता हो

रहता है। इसपर कभी आपकी कृपा होगी, तो कुछ लिखूँगा। मेरे गूमड़ा हुआ, तो अच्छा ही हुआ ; जो आपके अभिप्रायसे निर्गत उपदेश तो आपके हस्ताक्षरोंसे अंकित मिल गया। गूमड़ा अच्छा हो गया ; परन्तु अन्तरंग गूमड़ा दूर हो, तब कुछ वास्तव शान्तिका लाभ हो। आनेका विचार चातुर्मासके बाद करूँगा। श्री धर्मदास त्रिलोकचन्द आदिसे धर्मस्नेह कहना। मोक्ष-लिप्सा मोक्षका कारण नहीं, किन्तु लिप्साकी निवृत्ति मोक्षकी साधक है।

---

श्रीमान् प० शीतलप्रसादजी, दर्शनविशुद्धि

हम आषाढ़ बदि ८ तक ईसरी पहुंच जायेंगे। अब हमारा विचार दो मास मौन व्रत लेने का है। श्रावण-श्रावण चित्त की चञ्चलता को रोकनेका अच्छा साधन है। स्वाध्याय की लगन आत्म-कल्याण की जननी है। चित्त की भ्रान्ति उभय लोक की घातक व्याघ्री है। अन्तरंगमें जो धीरता है वही सुखकी जननी है। पुस्तकादिमें धर्म नहीं। धर्मके स्वरूपके जाननेमें ज्ञानी जीवको निमित्त हैं सो उदासीन न कि प्रेरक।

---

श्रीयुत पं० शीतलप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि।

पत्र आया। समाचार जाने। अजनमें कष्ट और आपत्ति अवश्य है, परन्तु अन्तरंगकी जब तक मूर्च्छा न छूटे तब तक यह अर्जन छूटता भी तो नहीं। और आजकलके समयमें यदि

स्वाधीनता-पूर्वक धर्म साधे, तो पराधीनतासे अच्छा है। अब किसीके घरपर एक लोटा जल चाहें तब मिलना कठिन हो गया है। प्राय. समाजमें अधिकाश अशुद्ध भोजन और विषयी जीवों की प्रचुरता है। अधिकाश तो सदाचारको दम्भ और उदासीनताको कायरता कहनेमें अपनी प्रशसा समझते है। अस्तु, यह सर्व परकी आलोचना है। इसमे क्या रखा है? स्वकीय प्रवृत्तिको यथाशक्ति सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिये। पदवीके अनुकूल शान्ति नहीं आती, किन्तु अन्तरंग कषायांशोंके कृशभावमे शान्तिका उदय होता है। यावत् समागम उत्तम हो और यदि अन्तरग कषायकी कृशता नहीं, शान्तिका अंश नहीं। विशेष क्या लिखे, बात तो उतनी ही है।

---

श्रीयुत बा० गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि.

१००) आ गया, ५६) लेकर शेष रुपया मगलसेनजीको दे दिया, क्योंकि यह वह उपाधि है जो आज तक इस जीवकी दुर्दशा किए हुए है। अस्तु, आमका टोकरा नहीं आया। आप अब निश्चिन्त होकर आवे। तथा जो स्याद्वाद विद्यालयको १०००) की सहायता पुस्तको द्वारा करनेका विचार किया था वह कार्यमे परिणत कर दिया होगा। अगर न किया हो तब कर देना। यदि अन्य विचार किया हो, तो आपकी इच्छा, परन्तु ज्ञानदानसे उत्कृष्ट दान नही। आपसे कुछ सम्बन्ध-सा हो गया है। इससे आपको प्रेरणा करते हैं। यदि इस विचारमें आपको अनुचित जान पड़े तो क्षमा करना। आपकी जो बलवती

इच्छा हो, करना, क्योंकि अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्य अन्यथा नही परिणमा सकता। और हमको लिख देना जो हम भविष्यमें ऐसी अनुमति न देवें जो निष्कारण क्षमा मागना पड़े। बादाम आपके आये, पार्श्वप्रभुके चरणोंमें भेंट कर दिये। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। अन्तःस्वास्थ्य भी अच्छा होगा, क्योंकि यह परभवका सहायी है। आम भेजनेमें कुछ विकल्प रहा, अन्यथा भोगमे आता। यह बात आप जानें। अथवा हम लोगोंका अन्तराय था जो एक भी न मिला। अथवा मोटर चलानेवालेका पापोदय था जो परवस्तुको हडप कर गया। अथवा मार्गमें कोई अन्य ही ले गया। जो हो, परन्तु उदय आपको छोड सर्वका जघन्य था। आपकी उदारता यदि शुभ भावसे हुई, फल देगी।

---

श्रीयुत महाशय बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। हमारे न मिलनेसे यदि चित्त उदास हुआ तब अच्छा ही है। उदयको दृढ बनानेके लिये पर-पदार्थोंसे सम्बन्ध छोडनेकी आवश्यकता है। वह आपसे छूटना असम्भव है। अभी आपका वास्तव रीतिसे कुटुम्ब-स्नेह नही छूटा है। यद्यपि हमारी बात अनिष्ट लगेगी, क्योंकि आप समझ रहे हैं कि हम तो विरक्त हैं, और हम इसके विपरीत देख रहे है। हम तो मकानके पराधीन हैं, परन्तु आप योग्यता पाकर भी पराधीन हैं, नहीं तो कभीके एक झोंपड़ी बनाकर धर्म साधन करते। पर आपको अभी रुपयेसे मोह नहीं छूटा। ३००) में झोंपडी बन

जाती। जो हो, हमें इससे क्या ? अपनी ही भलाई नहीं होती, आपकी क्या करेंगे। सेठजीका भी यही हाल है। धर्म उसीसे हो सकता है जो निर्लोभी हो और बिना इसके ऊपरी चेष्टा धर्म का कारण नहीं। आज तक ८ मास हो गये, १ कोठरी नहीं बन सकी। प० पन्नालालजीका कहना ही क्या है, वह तो अद्भुत हैं। हमारे सेठजी भी मर्यादासे अधिक लुब्ध हैं, अभी उन्हें कुटुम्ब का पूर्ण स्नेह है और मैं इसको अनुचित समझता हू। सम्यग्ज्ञान उसीकी प्रशसा करता है जो जीव बाह्य-आभ्यन्तर एक सदृश हो। लिखना बहुत था, परन्तु कुछ लाभ नही। क्योंकि आप लोग जो कुछ धर्म-प्रेम हमसे रखते हो, छोड़ दोगे ; छोड़ दो, परन्तु क्या करे, कहना ही पडता है। आप लोगोंकी इच्छा हो, यहा आ सकते हैं। यहापर मकान आदि स्वतन्त्रता से मिल सकता है। सेठजी भी आ सकते हैं। जिसको आना हो, आ सकता है। हमारा उसमें कोई विरोध नही, क्योंकि सर्व जीव स्वतन्त्र हैं। हम जेठ बाद आवेंगे, किन्तु अब सर्वथा स्वतन्त्र रहनेका विचार है। यदि आप लोग अन्यत्र जाना चाहें, जा सकते हैं। हमारा सकोच न करे। कई लोग स्थानोंमें धर्म खोजते हैं, कई पण्डितामे धर्म खोजते हैं, कई त्यागी आदि मे धर्म खोजते हैं, परन्तु श्री१०८ निर्ग्रन्थ गुरुओंने निर्ग्रन्थ आत्मामे ही धर्म बताया है। विशेष क्या लिखे, 'सम्पतिसे भेट नही, दारिद्र्यसे बैर' की कहावत है।

श्रीयुत महाराज बाबाजी, योग्य प्रणाम

आपके स्वास्थ्यका समाचार नहीं पाया, सो देना। जिसे लोकमें स्वास्थ्य कहते हैं, उसे जाननेकी आकांक्षा है। वास्तवमें जिसे स्वास्थ्य कहते हैं वह तो निवृत्ति-मार्ग है। निवृत्ति-मार्गमें जो चल रहे हैं, उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन उन्नति-रूप ही होता जाता है। बाबाजी महाराज, मैं आपको व्यवहारमें अपना परम हितैषी मानता हू। आपके द्वारा तथा आपकी निरीहतासे मैंने बहुत-कुछ लाभ उठाया है, जिस ऋणको मैं इस पर्यायमे अदा नहीं कर सकता। श्री स्वर्गीय बाईजीका तो अन्तमें वैय्यावृत्य कर बहुत अशोंमें सन्तोष कर चुका। परन्तु आपकी अन्त-अवस्थाका दृश्य अब इस पर्यायमें दृष्टिपथ होना असम्भव है। ऐसे कूट कारण उपस्थित हैं। फिर भी आपकी शान्तिका अभिलाषी हूँ। समाधिमरणके अर्थ कौन-कौनसे अस्त्र हैं, वही सक्षेपमें मुझे लिख दीजिये। पुस्तकोंके तो थोड़े-बहुत मैं जानता हूँ, परन्तु आपके अनुभूत जाननेका अभिलाषी हूँ, क्योंकि अब मेरी भी प्रत्यहा इसी योग्य हो रही है। आशा है, उपेक्षा न करेंगे।

—

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बहुत कालसे आपकी मण्डलीका समाचार नहीं पाया, सो देना। धर्म साधन सानन्द होता होगा। जब तक शान्तिका लाभ पूर्णरूपसे नहीं हुआ, तब तक यही मार्ग उसकी प्राप्तिका है। श्रीकुन्दकुन्द महाराजने यही उपाय बतलाया है—

एदह्मि रदो णिच्चं सन्तुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ;
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खम् ।

( समयसार, २०६ गाथा )

श्रीअमृतचन्द्र स्वामीका भी यही आदेश है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ;
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठिते ।

( समयसार, १३० कलश )

अत: जो परिपाटी परस्पर तत्त्व-चर्चाकी है, उससे कभी भी उपरम (निवृत्त) न होना। परिग्रहमें उदासीनता कल्याणकी जननी है। परन्तु धर्मके साधनोंमें उदासीनता अकल्याण कहाती है। संसार-विषयोंकी तथा सामाजिक रूढियोंकी कथामें समय लगाना निस्सार है। बहुत नेता इसमें लगे हुए हैं। विशेष क्या लिखें। उचित तो यह है—क्योंकि पर-चिन्ताकी गन्ध भी सुखावह नहीं—अपनी आत्मगत जो त्रुटि है उनको दूर करनेका यत्न करनेसे यदि अवकाश पा जाओ तब अन्यका विचार करो। देखो, दान-प्रकरणमें यही लिखा है कि आत्मार्थ सम्पन्न जो भोजन किया है, यदि पात्र आ जावे, उसीमेंसे दो। उसके अर्थ पृथक् प्रयास मत करो। उसीमें से श्रद्धादि गुण-सहित देकर लाभ लो। श्री देवीजीसे हमारी धर्मस्नेह-पूर्वक दर्शनविशुद्धि कहना। वह एक तात्त्विक भावनाका अभ्यास करनेवाली प्रशममूर्ति हैं। ऐसे जीव ही अल्प-संसारी होते हैं।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

"न जघन्य गुणानाम् । द्व्यधिकादि गुणाना तु" (तत्त्वार्थसूत्र, अ० ५, सूत्र ३४,३६) यही आगम बन्धमें प्रमाण है। नारकीकी आयु ६ मास पहले बँधती है। उसके आयुबन्धका समय वही है। और सप्तम नरकका निकला हुआ तिर्यंच ही होता है। सम्यग्दर्शनके कालमें तिर्यग् आयुका बन्ध होता नही। अतः सप्तम नरकवालेके मरणके ६ मास पहले सम्यग्दर्शन नही होता। आपने लिखा कि लाला न लिखो, शिष्य लिखो या पुत्र लिखो, सो ये दोनों व्यवहार मेरी दृष्टिमें हेय है। क्योंकि पूज्यपाद स्वामीजीने 'समाधिशतक' में लिखा है—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये ;
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ।

( 'समाधिशतक', गाथा १६ )

तब भला सोचो तो सही, जिस मोहोदयसे व्यवहारमे मुझे और आप दोनोंको उन्मत्त होनेका अवसर अनायास आ जावे वह लिखना मुझे इष्ट नहीं। रही पुत्र-पिता व्यवहारकी बात, सो श्रीकुन्दकुन्द देवके 'प्रवचनसार' के चारित्र-अधिकारमें उस विषयमें श्रीअमृतचन्द्र सूरिने ऐसा लिखा है—

"अहो इदं जन-शरीर-जनकस्यात्मन, अहो इदं जन-शरीर-जनन्या आत्मन्, अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति निश्चयेन युवां जानीतं तत् इममात्मानं युवां विमुञ्चतं, अयमात्माअद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिःआत्मानमेवात्मनो अनादिजनकमुपसर्पति ।"

(पृष्ठ २७२)

अत. उभय व्यवहारको छोड लाला लिखना ही अच्छा समझा गया है। मेरा आपसे कहना है कि प्रयास वहीं तक करना उचित है जहाँ तक अभीष्ट सिद्धि न हो। अभीष्ट सिद्धिके बाद प्रयास करना अनुपयोगी है। अत. जो बात आप चाहते हैं उसका आंशिक ही विकाश प्राय' हो सकता है। वह बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार यदि अनुमान किया जावे, तब आपकी आत्मा में हो चुका है, और मेरा ऐसा विश्वास है कि इससे अधिक इस समय होना कठिन है। हाँ, आगमसे तो यह निर्णीत है। इस कालमें उत्कृष्ट धर्म-ध्यान हो सकता है, परन्तु वह दिगम्बर अवस्थामें ही होता है। सो, वर्तमानमें दिगम्बर साधु भी बहुत हैं, परन्तु इनमे वह है—यह मेरे विश्वासका विषय नही। आपकी और आपकी मण्डलीकी जो श्रद्धा हो, सो आप जाने। मेरा तो दृढ विश्वास है कि जिसका आचरण सूत्र-विरुद्ध हो वह बाह्यमे कितना ही कठिन क्यों न तपश्चरण करे, किन्तु मोक्ष मार्गका साधक नही। तब सूत्र-विरुद्ध आचरणको तो कथा ही हेय है। विशेष कल्याणके अर्थी पुरुषको प्रथम तो अपने अस्तित्वमे दृढ़ प्रतीति होनी चाहिये। जिसके स्वकीय अस्तित्व में दृढ विश्वास है उसीके परका अवबोध यथार्थ हो सकता है। वही जीव देव, गुरु, धर्मकी श्रद्धाका पात्र है। उसीके भेद-ज्ञान होता है तथा वही राग-द्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्र को अंगीकार करनेका पात्र है। उस जीवके ही पुण्य और पापमें कोई अन्तर नही। उस जीवके ही शुभोपयोग होते हुए भी उपादेय बुद्धि नही। विषयोंकी अपरिमित सामग्रीके सद्भावमें

भोग होनेपर भी आसक्तता नहीं। नाना प्रकार परिग्रहोंके समागम होनेपर तथा विरोधी हिंसाके सद्भाव होनेपर भी विरोधियोंमें विरोध-भावका लेश नहीं। अन्यथा ऐसा जो 'पञ्चाध्यायी'कारने ( श्लोक ४२७ ) लिखा है कि

सद्यः कृताऽपराधेषु यद्वा जीवेषु जातु चित् ;
तद्वधादि विकाराय न बुद्धिः प्रशमो मतः।

इसकी सगति किस प्रकार होती? कहाँ तक लिखें, उस जीवकी महिमा अवर्णनीय है। मेरा तो यही विश्वास है कि उसके भावमे, जिसके द्वारा अनन्त ससारकी वल्लरी छेदी जाती है, जो निर्मलता और महत्त्व है, किसी भी भावके अन्दर वह बात नहीं। उस भावकी उत्पत्तिके अर्थ ही यह सर्व तत्त्वज्ञान, सत्समागम, पञ्चपरमेष्ठीका जाप आदि यावत् धर्मके कार्य हैं। यदि वह नहीं हुआ तब सर्व प्रयास पानी विलोवनके सदृश हैं। अत आत्माके उस भावका उदय हो गया तब अन्य प्रयाससे क्या और नही हुआ तब अन्य प्रयाससे क्या? अब मैं पत्र लिखने में बहुत आलस करता हूँ तथा लिखनेको उत्साह भी नहीं होता। पिष्टपेषणवत् मेरे पत्र होते हैं। मेरा ज्ञान इतना प्राञ्जल नहीं जो नवीन-नवीन बात लिखू। बार-बार वही लिखनेमे न लेखकको आनन्द आता है और न पाठकको। मैं तो इतना ही समझा हू कि मोक्षमार्गकी सिद्धिका मूल मन्त्र यह जीव आपके स्वरूपका जिस समय ज्ञाता-द्रष्टा रहता है उसी समय है, और इसके असद्भावमें नही। सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य यही है, सो आप लोग भी जानते हैं। तब इस विषयमें विशेष

ऊहापोहसे कुछ लाभ नहीं। वह अच्छा है, वह जघन्य है, अमुक स्थान इसके उपयोगी है, अमुक अनुपयोगी है, कुटुम्ब बाधक है, साधुवर्ग साधक है—यह सर्व मोहोदयकी कल्लोलमाला है। मोहोदयमें जो-जो कल्पना न हों, थोड़ी हैं। हा रे मोहोदय, तेरे सद्भावमें ही तो यह उपासना है 'दासोऽहं'; और तेरे ही सद्भावमें 'सोऽहं'—कितना अन्तर है! जिसमें ऐसी-ऐसी विरोधी भावना हों वह वस्तु कदापि ग्राह्य नहीं। अतः अब इसके जालसे बचो; और जो अधीरता इसके उदयमें होती है, पहले श्रद्धाके बलसे उसे हटाओ और निरन्तर भावना अपनी शक्तिको भावो। एक दिन वह आवेगा, जहाँपर 'दासोऽहं' 'सोऽहं' आदि सर्व विकल्प मिट जावेंगे। इन विकल्पोंकी कथा तो दूर रखो, 'मैं ज्ञाता द्रष्टा हूं' 'अरहन्त-सिद्ध-परमात्मा हूं' 'ज्ञायक-स्वरूप-आत्मा हूं' आदि विकल्पोंको भी अवकाश न मिलेगा। विशेष लिखनेका क्षयोपशम नहीं, भावना भी नहीं। बाबाजी महाराज तो अपूर्व व्यक्ति हैं। उन्हें कुछ नहीं लिख सकता। प्रणाम कहना। श्रीमहादेवीजीसे धर्मस्नेह कहना। वह भी एक अपूर्व आत्मा हैं जो अल्पकालमें संसारका अन्त करेंगी। लाला हुकमचन्दजी सलावा तथा लाला शीतलप्रसादजी शाहपुर तथा श्रीमंगलसैनजी आदिसे दर्शनविशुद्धि। अब तो आप लोग एक मासमें तो एक बार अवश्य मिल लिया करें। जो कुछ है सो आत्मामें है। यदि वहाँ नहीं तो कहीं नहीं।

श्री महाशय लाला त्रिलोकचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। भैया त्रिलोकचन्दजी, शान्तिका मूल कारण अशान्ति ही है। जब तक अशान्तिका परिचय हमको नहीं, तभी तक हम इस दुःखमय संसारके पात्र हैं। यदि आपको अशान्तिका अनुभव होने लगा, तब, अब आपका ससार-तट निकट ही है। आगम-ज्ञानका इतना ही मुख्य फल है कि हमें वस्तु-स्वरूपका परिचय हो जावे, इतना ही साधु-समागम और विद्वानोंके सम्पर्कका उपयोग है। चारित्रके विकाशमें किसीकी आवश्यकता नहीं। वह तो ज्ञानी जीवकी साहजिक प्रकृति है। चरणानुयोगके देशव्रत और महाव्रत यह कषायोदयके कार्य हैं; अतएव ये दोनों कथंचित् स्वरूपके साधक भी हैं और बाधक भी हैं। कल्याणके पथमें बाह्य सद्भाव-रूप कारणोंकी आवश्यकता नहीं। कालादिक उदासीन निमित्त हैं, वे तो शुद्ध प्राप्तिमे तथा अशुद्ध प्राप्तिमें समान-रूपसे कारण हैं। चरमशरीरादि सर्व उपचारसे कारण हैं। मुख्यतासे एकत्व परिणत आत्मा ही ससार और मोक्षका हेतु है। इसको आप भी जानते हैं और आपकी मण्डली भी अनभिज्ञ नहीं। बाबा तो विशिष्ट ज्ञानी और निरीह हैं। उनकी हम क्या कथा करें? उन्हें इतने विकल्प रोचक होंगे। वास्तवमे वस्तु-स्वरूप तो प्रमाण और नयका विषय ही नहीं। यथा श्रीभगवान केवली श्रुतज्ञानके अवयवभूत व्यवहार और निश्चय नयके स्वरूपको जानते हैं, न तु देदीप्यमान तथा सहज विमल

और सबल केवल-रूपकर स्वयं नित्य विज्ञान-घन होनेसे श्रुत-ज्ञानकी भूमिकाको अतिक्रमण करनेसे समस्त नय-पक्षके परि-ग्रहसे दूरीभूत होकर किंचन्मात्र भी नय-पक्षको ग्रहण करते हैं। इस 'करते हैं' के साथ 'न तु'का सम्बन्ध है। इसी तरह श्रुतज्ञानके अवयवभूत जो व्यवहार और निश्चय-पक्ष हैं, वे भी क्षयोपशम-ज्ञानसे जायमान विकल्पवाला जो ज्ञानी है, वह भी परके ग्रहणकी उत्सुकताके जानेसे केवल स्वरूपको जानता है, किसी भी पक्षको ग्रहण नहीं करता, उसीके नाम—ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्याति, अनुभूतिमात्र आदि हैं। वस्तुत· पदार्थ तो अनिर्वचनीय है, किन्तु विना शब्दके उसका कथन नहीं हो सकता ; अतः उसे कथञ्चित् वाच्य भी कहना पड़ता है। सर्वथा बौद्धोंकी तरह अवाच्य नहीं। व्यवहार विना मोक्ष-मार्गका उपदेश नहीं। और जितने भी मत संसारमें हैं, एक भी ऐसा नही जो इस वाच्यताको स्वीकार न करे। ऐसा होनेपर व्यवहार ग्राह्य नहीं। क्योंकि मिश्री शब्दसे मिश्री पदार्थका परोक्ष ज्ञान होता है। इतनेको ही मानकर यदि कोई मिश्री खानेकी चेष्टा न करे, तब वह अनन्तकालमें भी मिश्रीके स्वादका भोक्ता नहीं हो सकता। इसी तरह श्रुतज्ञानके द्वारा वस्तु-स्वरूपको जानकर भी यदि कोई तद्रात्मक होनेकी चेष्टा न करे, तब कभी भी, ज्ञानात्मक जो आत्मा उसके स्वादका पात्र नहीं हो सकता। रागादिकके जाननेसे ही न रागादिक-रूप होता है और न वीतरागके जाननेसे

वीतराग हो सकता है। प्रतिरूप परिणामात्मक होनेसे, राग और रागादि निवृत्ति-रूप परणति होनेसे ही वीतराग हो सकता है। इससे, आपसे हमारा उपकार हुआ या अपकार, इस कथनको उतना ही महत्त्व देना है जितनी चेष्टा इस बातकी करो कि बद्रीके अनुकूल अभिप्रायमें रागाकुश न हो। श्रद्धाके होनेमें यथाशक्ति पदकी आवश्यकता नहीं। सब संसारके दुःखसे भयभीत हैं। हम भी तो भयभीत हैं। हम और आप क्या, सारा जगत् ही इसी गल्पवादका जंक्शन हो रहा है। इससे कुछ तत्त्व नहीं, तत्त्व तो श्रद्धापूर्वक उपायके अनुकूल यथाशक्ति निवृत्ति-मार्गपर चलनेसे है। विशेष क्या लिखें? मन चगा तो कठौतीमें गंगा; और मन नगा तो गगामें नगा। हमारा बाबाजी महाराजसे इच्छाकार और श्री देवीजीसे धार्मिक स्नेह अवश्य कहना। और कहना कि महाराज, जब तक अन्तःपरिणतिकी निर्मलता नहीं, जब तक मैं तो स्वय अपनेको उन्मत्त कोटिमें गिनता हूं। अन्यकी वह जाने या दिव्यज्ञानी जानें। लाला धर्मदासजीसे हमारा धार्मिक स्नेह कहना। उनसे हमारा बहुत दिनसे सम्बन्ध है, जब कि शान्तिकी माँ जीवित थी। और कहना कि विकारसे ही ससार है। धन पर है, वे भी जानते हैं; परन्तु इसके द्वारा शान्तिको अशान्ति पहुचानेकी चेष्टा अच्छी नहीं। सब अपने-अपने भाग्यको लिये हैं। आप तो अब आनन्द-जीवन बिताओ। कोई किसीका नहीं। हमारा पत्र बाबाजीको भी सुना देना।

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

एक पत्र दे चुके हैं, पहुँचा होगा। हमने एक कार्य विचारा है। जो कुछ आवे, लिखना, और प्रातःकालका समय उसमें लगा देना। अपना तो मनोरथ है; देखें प्रभुके ज्ञानमें क्या आया है? यदि कल्याणका मार्ग है तो—निरीह और निस्पृहता ये दोनों जब तक नहीं तब तक कल्याण अति दूर है। आप देवीजीसे दर्शनविशुद्धि कहना; और कहना कि—स्वात्मोन्नतिके लिये, जहाँ तक बने, दृढ़ अध्यवसायकी आवश्यकता है। शरीरकी कृशता उस कार्यमें उपयोगिनी नहीं। ( विशेष बात ) प्रत्येकके अभिप्रायको सुन लो और श्रवण कर कुछ दिन उसपर विचार करो। एकदम उसका श्रवण कर बहक मत जाओ। कथा जितनी सुननेमें प्रिय है उसके अन्तस्तलमें उतना रहस्य नहीं, और न शान्तिजनक आनन्द ही है। केवल मिश्रीकी गोष्ठीमें तज्जन्य आनन्द नहीं; आनन्द तो पित्तादि रोग-शून्य जिह्वा द्वारा उत्पन्न मतिज्ञान है। आनन्दका उपादान आत्मा है, न कि मिश्री। प्रत्येक कार्यका आरम्भ भविष्य देखकर करो। केवल वर्तमान परिणामके उद्वेगसे अधीर होकर अधीरतासे कार्य मत करो। ( इससे ) सम्भव है उत्तरकालमें उससे गिर जाओ। अतः सबकी सुनकर स्वात्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें जो साधक हो, उसे करो; शेषको

त्याग दो। सबसे उत्तम मार्ग तो यह है कि जो प्राचीन ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ हैं उनका रहस्य जानो, अथवा उनके जो अनुकूल भाषा-ग्रन्थ हैं उन्हें मनन करो। यद्वा-तद्वा ग्रन्थ पढ़नेसे, श्रद्धान होना तो दूर रहा, समीचीन मार्गसे च्युत होनेकी सम्भावना है।

व्रतका माहात्म्य वहीं तक कल्याणकारी है जहाँ तक ध्यान और अध्ययनमें वह बाधक न हो। यह फल श्री अकलंकदेवने "राजवार्तिक" में लिखा है। अर्थात् अनशनादिका प्रयोजन स्वाध्याय और ध्यानकी सिद्धि है। वाह्य तपका प्रयोजन आभ्यन्तर-तपकी सिद्धि है और आभ्यन्तर-तपका प्रयोजन स्वात्मलाभ है, विशेष क्या लिखें। आप लोग अब एक बार खतौलीको 'प्राचीन खतौली' बना दें। ऊपरी बातोंसे कुछ सार नहीं। खतौली ज्ञानियों का घर था। मण्डलीसे धर्मस्नेह।

—

श्री देवीजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया। समाचार जाने। इस क्षेत्रमें सम्प्रति बाबाजी (बाबा भागीरथजी वर्णी) सरीखे निस्पृह और यथार्थ रीतिसे व्रत पालनेवाले प्राय. दुर्लभ हैं। उनका जितना वैयावृत्य जिससे बनता है, हम तो उस जीवको धन्य समझते हैं। मैं ३० वर्षसे उन्हें महापुरुष समझता आया हू और प्राय. उनके

अनुकूल ही प्रवृत्ति कर रहा हूँ। अब इस पर्यायमें उनका मिलना मुझे तो दुर्लभ-सा हो गया है। आप, जहाँ तक हो, उनका वैयावृत्य करते रहना। बाबाजी अब खतौलीसे ग्रामान्तर न जायँ। क्योंकि समाधिके योग्य खतौली उपयुक्त क्षेत्र है।

समाधि तो निस्पृह पुरुषोंके निरन्तर रहती है। परन्तु जन्मसे जन्मान्तर होनेका ही नाम मरण है, और जहाँ साम्यभावसे प्राण विसर्जन होता है उसे समाधिमरण कहते हैं। इसके लिए प्रायः निर्मल निमित्त होने चाहिये। ऐसी चरणानुयोगकी आज्ञा है। परन्तु जिनका उत्तम भविष्य है, उनकी, घोर उपसर्ग आदि समाधिमरणके विरुद्ध प्रबल कारणोंके उपस्थित होनेपर भी, उत्तम गति हुई। इसलिए निमित्त - कारणोंके ही जालमें फँसा रहना अच्छा नहीं। आत्म-परिणामोंको निर्मल करनेमें अपना पुरुषार्थ लगा देना चाहिये। जिन जीवोंके निरन्तर निर्मल परिणाम रहते हैं, वे नियमसे सद्गतिके पात्र होते हैं। समाधिके लिए आचार्योंकी आज्ञा है कि काय और कषायको कृश करो। यहाँपर कायका ग्रहण आनुषंगिकसे है। क्योंकि काय पर-द्रव्य है, उसकी कृशता और पुष्टता न तो समाधिमरणमें साधक है और न बाधक। हाँ, कषाय अनादिकालसे स्वाभाविक

पदके बाधक हैं, क्योंकि इनके सद्भावमें आत्मा कलुषित हो जाता है ; और जब वह कलुषित हो जाता है, तब मद्यपायीकी तरह नाना प्रकारकी विपरीत चेष्टाओं-द्वारा अनन्त संसारकी यातनाओंका ही भोक्ता रहता है और जब कषायोंकी निर्मूलता हो जाती है तब अनायास आत्मा अपने स्वाभाविक पदका स्वामी हो जाता है। अतः समाधिमरणके लिए केवल कषायोंकी कृशता ही उपयोगिनी है। अब, इस समय, बाबाजी महाराजको बाह्य कारणोंको गौणकर केवल रागादिकोंकी कृशता ही पर निरन्तर उद्यत रहना श्रेयस्कर है। इस दुर्बल अवस्थामें कायकी कृशता तो उनकी स्वयं घूणाक्षर-न्यायसे अनायास हो गई है। यद्यपि इस योगके लिए चरणानुयोगमें १२ वर्ष पहलेसे उसकी (समाधिमरणकी) विधिको संचय करनेके उपाय बताते हैं ; परन्तु उत्सर्गके अपवाद भी बहुतसे होते हैं। ऐसे-ऐसे जीव देखे गये हैं जो थोड़े ही समयमें परिणामोंकी निर्मलतासे उस समाधिके पात्र हो गये। कषायकी कृशताका अर्थ मेरी अल्प बुद्धिमें यह आता है कि जो औदयिक रागादिक हों, उनमें आत्मीय बुद्धि न होनी चाहिए। क्षीणमोह, उपशान्तमोहके पहले मोह-जनित औदयिक भावोंकी उत्पत्ति अवश्यम्भाविनी है। अतः हम लोगोंकी तो बहुत ही जघन्य अवस्था है।

यहाँ रागादिकोंकी उत्पत्तिकी प्रचुरता है, रहो। यदि हम उन भावोंके होनेपर साम्यभावका आवलम्बन कर शान्त रहें, तब वे हमें आगमी कालमें अपने जालमें नही फँसा सकते। रागादिकोंके होनेपर जो आकुलित हो जाता है और उनके अपगमके अर्थ कभी स्तोत्र-पाठ, कभी चरणानुयोगके द्वारा प्रतिपाद्य उपवासादि व्रत, कभी अध्यात्म-शास्त्र-प्रतिपाद्य वस्तुका परिचय, कभी साधु-समागम, कभी तीर्थयात्रा-गमन आदि सहस्रों उपायोंसे उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा कर स्वय आकुलित हो जाता है, उस जीवके लिए रागादिकी सन्तानसे विजय पाना दुर्लभ है। वही जीव इनसे रणमें विजय पा सकेगा जो रागादिकोंके होनेपर साम्यभावको अवलम्बन करेगा। बहुतोंका कहना है कि 'कर्म छूटें न मुक्ति विना' सो ठीक है। ऐसा नियम है कि जो कर्त्ता है सो भोक्ता है। यदि यह नियम न माना जावे, तब अनेक आपत्तियोंकी सम्भावना है। अत', मिथ्यादृष्टि अवस्थामें किये जो कर्म उनका कर्त्ता मिथ्यादृष्टि था। अब, जब भेद-ज्ञानके बलसे जीवके स्व-पर विवेक हो गया, तब अनायास इस जीवके विपर्यय-भावके मिट जानेसे सम्यग्दर्शनका उद्भव हुआ। जब यह जीव सम्यक्त्वी हो गया, तब सुतरा, मिथ्याभावसे जो कर्म-बन्ध किये थे उनका भोक्ता यह नहीं हो सकता। क्योंकि जो करेगा सो भोगेगा। अतः मेरा श्री पूज्य बाबाजीसे निवेदन कर देना कि अब "सर्वान् विकल्पान् परित्यज्य स्व-कल्याणाय

सर्वतोभावेन रागाद्यकर्षनीया, इहमेवोऽजन्मपालित ब्रह्मचर्य स्वफलम्।" मैं तो आपका एक अन्यतम भक्त हूँ। जैसी मेरे ऊपर दृष्टि सदैवसे रही, वैसी ही अब भी रहेगी। अन्त, 'समाधि' में लिखा है मित्रानुराग, सो वह भाव मेरेमें त्यागसे ही सुतरा निरतिचार समाधि होगी। आपकी तरफसे मित्र-व्यवहार है। मैं आपका मित्र नहीं, भक्त हूँ। मेरा बाबाजीसे जो सम्बन्ध था वह अब प्रायः थोड़े दिनका रह गया है। थोड़े दिन ही रहे, इसकी भी कोई इयत्ता नहीं, परन्तु छूटेगा नियमसे। अत. उन्हें केवल मेरा आशय सुना देना। इच्छाकार इससे नहीं लिखा कि उनकी भावना तो सर्व-त्यागकी ओर है। उसका अभी उदय नहीं हुआ।

× × ×

श्री महादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

सानन्द पर्वकी समाप्ति हुई होगी। 'सानन्द' शब्द ऐसा सरल है कि इसका प्रयोग करना कोई कठिन नहीं। आनन्द तो वह वस्तु है जो आत्मामें शान्तिका लाभ करावे। केवल कहनेसे शान्ति नहीं मिलती। यह पर्व बहुत तत्त्व-चर्चाके साथ बीता। क्योंकि इसमें खतौलीकी मण्डलीका सहवास था। चर्चा वही थी जो आगममें है। उसीको बारम्बार क्रमसे अभ्यासकी तरह घोषण कर लेते थे। जिसे आगमका अभ्यास नहीं था, वह बेचारा बैठा रहता था। इसमें इतनी शान्ति अवश्य मिल जाती थी कि हम भी कुछ अभ्यासी हैं। अथवा जिसको

जो मिलता हो। मैं तो निजकी बीती कह रहा हूं। आपने दशधा धर्मका पालन सम्यक्रीतिसे किया होगा। हमने भी यथाशक्ति साधन कर पर्व-निमित्तक अपने जन्मको सफल बनानेका प्रयत्न किया। यह पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है; जैसे छोटी लडकियोंमें गुडिया खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु ता निवृत्ति-रूप है। प्रवृत्ति द्वारा तो उसका यथा-योग्य कहीं आंशिक और कहीं पूर्णरूपसे घात ही है। यदि ऐसा न होता, तो महाव्रती महर्षि, जोकि सागोपांग महाव्रत पालन करते हैं, उनके चरित्रको 'प्रमत्त चरित्र' शब्दसे न कहा जाता। प्रमत्त चरित्र करणानुयोगने कहा है। अथ च, दैवात् प्रवृत्ति-मार्गकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे, तब चरित्रका घातक तो निर्विवाद ही है। सम्यग्दर्शनका घात भी दुर्निवार है।

आजकलका वातावरण ऐसा प्रबल है कि निश्चय-धर्मके विवेचकोंको 'धर्मद्रोही' शब्दसे अलकृत करता है; और जो बड़े बड़े दिग्गज विद्वान भाषाकार हो गये हैं, उन्हें मनमाने शब्दों द्वारा यद्वातद्वा कहकर अपनेको धन्य समझता है। ऐसे वाता-वरणमें रहकर कुशल मार्ग अति दुर्लभ है। आजकल तो यह सिद्धान्त-सा हो गया है कि शुभात्मक प्रवृत्ति ही गृहस्थोंके लिए कल्याणका मार्ग है। उन्हें निश्चय-धर्म मनन करनेका कोई अधिकार नहीं। इन जीवोंके शुद्धोपयोग तो दूर रहो, इनकी अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलंकित कर रखा है। अत· जहां तक बने, इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवालोंकी

संगति छोड़ना ही श्रेयस्कर है। इनका समागम छोड़ना तो उचित हैं ही, किन्तु जो एकान्तसे निश्चय-धर्मकी मुख्यता कर अपनेको मोक्षमार्गका पथिक मान स्वेच्छाचार-पूर्वक प्रवृत्ति करनेसे निर्भय हैं, उनका भी सम्पर्क त्यागना आत्महितका साधक है। **शुभोपयोगके त्यागनेसे शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोगमें जो मोक्षमार्गकी कल्पना कर रखी है, उसके त्याग और राग-द्वेषकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है, और यही परिणाम मोक्षमार्गका साधक है।** इनके विपरीत कषायसे हम संसार ही के पात्र होंगे। अत इस पवित्र पर्वमें अविरुद्ध निवृत्ति-मार्गकी चर्चा करनेका हमारा ध्येय ही हमें श्रेयोमार्गका पथिक बनायेगा। पर्व तो बहुत हैं, परन्तु यह पर्व भगवान्‌के पञ्चकल्याणकोंमें तप-कल्याणककी तरह कुछ विशेषता रखता है, जैसे अष्टाह्निकापर्वमें पूजनकी विशेषता है और षोडशकारणव्रतमें उपवासोंकी मुख्यता है। परन्तु इस पर्वमें क्रोधादि कषायोंपर, जोकि परमार्थ-पथके घातक तथा आत्माके शत्रु हैं, विजय पानेकी विशेषता है। इसकी मुख्यताका स्वाद तप-कल्याणकके स्वादका आनन्द लेनेवाले लौकान्तिक देव-ऋषियोंकी तरह विरलोंको ही आता है। इसी पर्वके अन्तर्गत आकिंचन-धर्मके दिनसे रत्नत्रयका उदय होता है, जो रत्नत्रय साक्षात् मोक्ष-मार्ग है। इस पर्वमें यदि शान्ति न आई तो, अन्यमें आना

कठिन ही है। अतः जिन्होंने अपने क्रोधादि कषायोंको इन दिवसोंमें कृश किया, वे ही धन्य हैं। अन्यथा—'कहाँ गया ?' 'दिल्ली।' 'कितने दिन रहे ?' 'बारह वर्ष।' 'क्या किया ?' 'भाड़ झोंका।' 'क्या खाया ?' 'चने।'—यही सार रहा। अस्तु, इस धर्मकी मीमांसा तो वही कर सकता है जिसके इसका उदय हुआ हो। इस धर्मका क्या रूप है, सो "राजवार्तिक" से जानना; और इतना अनुभवसे भी जाना जा सकता है कि जिस समय हमारा क्रोध स्वकीय कार्य करके खिर जाता है उस समय हमें जो शान्ति मिलती है, वही क्षमा है और वही उसके अभावकी सिद्धि है। परन्तु जो क्रोधके कार्य-द्वारा सुख मान रहे हैं, उनके लिए इस गूढ़ तत्त्वका रहस्य समझना कठिन है। नीचे लिखा हुआ बाबाजीको सुना देना—

गत बारह मासमें प्रमादादि द्वारा हमसे जो अनुचित प्रवृत्ति हुई हो और उसके द्वारा जो हमारी आत्माका अकल्याण हुआ हो, उस समय यदि आपके मन्निमित्तक विभाव भावका सञ्चार हुआ हो, तब उसे अनात्मीय जानकर ज्ञाता-द्रष्टा अपनी पवित्र आत्माको ही मनन करना। यद्यपि आप जैसे महापुरुषोंके लिए स्वप्नमें भी इसकी सम्भावना नहीं। मैंने स्वकीय शल्य पृथक करनेकी चेष्टा की है। अब जो अपराध हुआ है सो लिखता हूं। एकबार मैंने आमको नाकसे लगाकर सूंघ लिया था, तब आपने उपदेश दिया था कि यह खाने योग्य नहीं रहा। तबसे मैंने नियम ले लिया कि किसी द्वारा भुक्त वस्तु

काममें नहीं लेगा। उसका बराबर पालन करता हूं। एकबार दो तोला केशर मँगाई थी, परन्तु एकने उसे सूघ लिया, फिर मैंने न तो उसे चढ़ाया और न काममें लिया।

× × ×

श्रीयुत लाला त्रिलोकचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, सामाचार जाने। शान्ति न आनेका कारण कषाय है और शान्ति आनेका कारण कषायका अभाव है। उपयोग न शान्तिका कारण है और न अशान्तिका कारण है। आत्मोपयोगी उपयोग और घट विषयक उपयोग परस्पर कुछ विलक्षणता नही रखते। जिस कालमें अविरत अवस्थामें चक्रवर्तीका उपयोग आत्मामें लीन है और पञ्चम गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च घास चर रहा है. उस समय चक्रवर्तीकी अपेक्षा उस घास-उपयोगी तिर्यञ्चके अधिक शान्ति है। व्यक्तिकी बात मैं नहीं कह सकता। आपके शान्ति है या अशान्ति, इसको मै निर्णायक नहीं। परन्तु इस अवस्थामें मुनिकी शान्तिको अपनेमें अनुभव करनेकी चेष्टा निष्फल है। इन आकुलताओं के भयसे बाह्य त्यागकी आकुलता करना मैं तो कुछ महती बुद्धिमत्ता नहीं समझता। "समय पाय तरुवर फले, जहँ तक सींचो नीर"—व्यर्थका ऊहापोह पासकी ( गाँठकी ) भी शान्तिका घातक है। वास्तवमें पर्यायके अनुकूल त्याग ही हितकर है।

× × ×

श्रीयुत पं० शीतलप्रसादजी, दर्शनविशुद्धि

भैया, पत्र क्या लिखूं ? अंतरंगकी निर्मलता ही गुरु है। उसके बिना, मेरे पत्र तो कोई वस्तु नहीं, ऋषि - वाक्य तक शान्ति-जनक नहीं हो सकते। अतः, आप तो पण्डित हैं, जहाँ तक बने, अन्तरङ्गसे राग-द्वेषकी वासनाको विलय करनेका ही प्रयास कीजिये। वहाँ आनेमें कोई बाधा नहीं। किन्तु मेरी प्रकृति दूसरी बार पानी पीनेकी है तथा बिना रुईके ठंड नहीं मेट सकता। इन सबका प्रायः निषेध है। यदि निषेध न हो, तब तो कुछ बात नहीं। परिग्रहसे ममत्व नहीं, रुपयाकी मूर्च्छा नहीं, परंतु ठंडकी परिषह नहीं जीत सकता। इत्यादि कठिनाइयाँ बाधक हैं। आप आनन्दसे स्वाध्याय कीजियेगा। यह कल्याणका पथ है। अथवा, जब आपकी गाडी पटरीपर आ गई है, तब एक दिन अभीष्ट नगरमें भी पहुंच जाओगे। शीघ्रता करनेसे लाभ नहीं। अनुकूल सामग्रीके सदृश ( अनुसार ) कार्य श्रेयस्कर होता है। हमारी डायरी पूर्ण होनेपर भेज देंगे। बाबाजी महाराजसे कह देना कि हमारी प्रवृत्ति इतनी कायरताके वशीभूत हो गई है कि निरन्तर जो पर-पदार्थ मोक्षके परमार्थमें बाधक हैं उन्हींका आश्रय लेनेको लोलुप रहती है। सर्व सज्जनोंका समुदाय यदि अनुकूल हुआ तब तो साधक है, अन्यथा एकाकी रहना श्रेयस्कर है।

× × ×

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

आपको ज्वर आता था, यह भी एक पर्यायकी क्रीडा है। सबको देखते रहो। पर्याय नटका स्वाग है। इसे स्थायी न मानना। यह तो इसमें मूल स्वाग है जो जन्मसे मरण पर्यन्त रहता है। अवान्तरमें अनेक मनोरञ्जक वीभत्स तथा दुःखद नाना प्रकारके स्वाग होते रहते हैं। यदि दर्शक बनकर द्रष्टा रहोगे, तब तो कुछ विशेष हानि नही, किन्तु यदि उनमें मनोनीत कल्पना की, तो फँसोगे। विशेष क्या लिखें? पत्र, जोकि निकल रहे हैं, आगारकी पुष्टिके नामसे विष-मिश्रित क्षीरपाक खिला रहे हैं। इनकी सुन्दरतासे मोहित होकर अपनी प्रवृत्तिमें बाधा न डाल लेना।

× × ×

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। यदि आपके पानीका त्याग था और पी लिया, तब तो चार एकाशना एक मासमें कर लो और दो रुपयेका अनाज गरीबोंमे बाँट दो। और, यदि त्याग नही था, तब इसकी आवश्यकता नहीं। आप कोई बातकी चिन्ता न करे। जो प्रभुके ज्ञानमें आया है, होगा ही। निरन्तर उपयोगकी निर्मलता करनेका पुरुषार्थ करो। पदार्थके जाननेका यही तो फल है कि आत्माको शान्ति मिले। शान्ति ज्ञानसे नही मिलती, और न इन प्रवृत्ति-रूप व्रतादिकोंसे ही उसका आविर्भाव होता है, और न संकल्प-कल्पतरुसे कुछ आने-जानेका।

कषायोंकी प्रवृत्तिसे कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी। शान्तिका वैभव रागादिक भावोंके अभावमें है। उनका अभाव कैसे हो? प्रत्येक विषय जो उसके बाधक हैं, प्रथम तो द्रव्यसे उनका परित्याग करो। पश्चात् चित्तसे उसका विकल्प मेटो। सर्व जीवोंके साथ अन्तरंगसे मैत्री-भाव करो। प्रत्येक प्राणीके साथ अपने आत्माके सदृश व्यवहार करो। उदासीनताका यह अर्थ है कि परसे आत्मीयता छोडो। केवल वचनोंके आय-व्ययसे तुष्ट न हो और न रुष्ट हो। अपनी आत्म-परणतिकी गतिको सम्यक् जानकर ही सेवो। व्यर्थ चली पर्याय क्या करे? कहाँ जावें? आर्तध्यानके चक्रमें मत आओ। हम आत्मा हैं, हममें जो दोष आ गये हैं, वे हमारी भूलसे आ गये हैं। हम ही उनका निपातन करेंगे।

× × ×

श्रीयुत बाबाजी महाराज, योग्य इच्छाकार

बहुत कालसे आपका आशीर्वादात्मक पत्र नही आया, सो यदि नियममें बाधा न हो, देना। महाराज, क्या कोई ऐसा भी उपाय आपके दिव्य अनुभवमें आया है जो हमारे सदृश मूढोंके सुधारका हो? यदि नही है, तब तो कथासे लाभ ही नही, यदि यह है, तब कृपाकर उस उपायकी एक कणिका इधर भी वितरण कर दीजिये। बाह्य उपाय हमने भी बहुतसे किये, परन्तु उनसे तो शान्तिकी गन्ध भी नही आई। क्या शान्तिका कारण इन उपायोंका अपाय तो नहीं? सन्तोषके

लिए मान भी लिया जावे, तब फिर इन उपायोंके जालसे निष्पाप रक्षित रहनेका क्या उपाय है? कुछ समझमें नहीं आता? क्या इन मनो-वचन-कायके व्यापारोंको निरहंकार निर्माप सरल करना ही तो उपाय नहीं? फिर भी यह शंका होती है कि निरहंकार निर्माप होनेके अर्थ क्या उपाय है? यह अन्योन्याश्रय शृंखला कैसे दूर हो? यद्यपि महर्षियोंने बाह्यसे उस परमात्म-स्वरूपकी प्राप्तिका उपाय परिग्रह त्याग बताया है। तत्त्व-दृष्टिसे देखा जावे तो धन-धान्य जो बाह्य हैं वे तो, यदि भीतरी विचारसे देखें तो, त्याग-रूप ही हैं। क्योंकि वस्तु वास्तवमें अन्यापोह-पूर्वक ही है, विधि रूप है। केवल आत्मगत जो मूर्च्छा है वही त्यागनेके लिये आचार्योंका इस बाह्य परिग्रह त्यागनेका मूल उद्देश्य है।

आपके निरीह परिवर्तनसे मैंने बाह्यसे तो बहुतसा उपाय बाह्य परिग्रहके त्यागका किया और करनेकी चेष्टामें हूं। मेरे पास डाकखानेकी पुस्तकमें ७००) थे और उनके रखनेका उद्देश्य यही था कि यदि कभी असातादिका उदय आया, तब काम आयेंगे। परन्तु आपके मतको देखकर निश्चय किया कि भवितव्य अनिर्वार है। अत. उन्हें स्याद्वाद विद्यालयमें दे दिया, और बाईजीके नामपर ४३००) के स्थानमें ५०००) करवा दिये। किन्तु फिर भी जो शान्तिका लाभ चाहिये, वह नहीं हुआ। इससे यही निश्चय किया कि शान्ति बाह्य-त्यागमें नहीं, आभ्यन्तर त्यागमें है। उसका अभी उदय नहीं, परन्तु श्रद्धा अवश्य है। शान्तिका मार्ग अपने ही में है। केवल एक गुत्थीका

विदारण करना ही पुरुषार्थ है। उसका भेदन करना इस पर्यायसे कठिन है। मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि जीव पर्यायके अनुकूल शान्ति करे, तो कृतकार्य हो सकता है। देशव्रती यदि महाव्रतीके तुल्य क्षमादिक चाहे, तो महाव्रती हो जावे। केवल वचनोंकी चतुरतासे शान्ति लाभ चाहना मिश्रीकी कथासे मीठा स्वाद लेने जैसा प्रयास है। अत. यही निश्चय किया कि जितनी पर्यायकी अनुकूलता है उतना ही साधन करनेसे कल्याण-मार्गके अधिकारी बने रहोगे। पर्यायके प्रतिकूल कार्य करनेपर मेंढकीके नालकी दशा होगी। इसीमें सन्तोष हैं। आपने दशमी प्रतिमाकी बावत कुछ 'जैन सन्देश' में इशारा किया है, परन्तु अपवाद-लोक भी होता है।

× × ×

श्री महादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

कल्याणका पात्र वही होता है जो विवेकसे काम लेता है। देखो, अविरत-गुणस्थानवाला असयमी और मिथ्या-गुणस्थान वाला सयमी—इन दोनोंमें यदि वाह्यदृष्टिसे विचार किया जाय, तब अन्यत् भेद प्रतीत हो रहा है। एक तो साक्षात् मोक्ष-लिङ्ग को धारण किये हुए हैं और एक रणक्षेत्रमें कटिवद्ध हो रहा है। फिर भी एक मोक्षमार्गके सम्मुख है और एक मोक्षमार्ग को जानता ही नहीं ; सम्मुख होना तो दूर रहो। यहाँपर केवल भेद-ज्ञानकी ही महिमा है। अत. जहाँ तक बने, वाह्य क्रियाको आचरण करते हुए आभ्यन्तर दृष्टिकी ओर लक्ष्य रखना ही इस पर्यायका पुरुषार्थ है। निरन्तर लक्ष्य अपनी परिणतिके

ऊपर रहना चाहिये, तब बाह्य-पदार्थोंसे विमुखता आवेगी, स्वयमेव अन्तरदृष्टि उदयमें आवेगी। क्योंकि विभाव पर्यायके सद्भावमें स्वभाव परिणमन नहीं हो सकता। पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक होता है। और बुद्धि क्या है? हमारा अभिप्राय ही तो है। सम्यग्दृष्टिके जो भी शुभ-अशुभ व्यापार हैं, उन्हें वह अभिप्रायसे नहीं करना चाहता,—करने पडते हैं। द्रव्यलिङ्गी शुभ-परिणामोंका अभिप्रायसे कर्ता बनके कर्ता है, क्योंकि आत्म-द्रव्यका वास्तव स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा है। उसके साथ अनादिकालीन कर्मोंका सम्बन्ध है, जिससे उसकी योग-शक्ति और विभाव-शक्ति उसे विकृत-रूप परिणमन करा रही है। इसमें विभाव-शक्ति द्वारा आत्मामें रागादि विभाव भाव होते हैं जो कि ससारके मूल कारण हैं। योग-शक्ति उतनी घातक नहीं, वह केवल परिस्पन्द करती है। यदि रागादि कलुषता चली जाय, तब वह स्वच्छतामें उपद्रव नही कर सकती, और उस बन्धको, जिसमें स्थिति और अनुभाग होता है, नही कर सकती। अत· पुरुषार्थी वही है जिसने रागादिकके अभावके अर्थ विवेक उत्पन्न कर लिया है। यह भेद-ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और इसीके बलसे ही आत्माके वह निर्मल परिणाम होते हैं जो सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं। उन भावोंकी महिमा करणानुयोगसे जानो। जो भाव सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं, उनके सदृश अनन्त संसारके घातक अन्य भाव नही हैं। यदि एक बार ही वह हो जावे, तब अधिक ससार नहीं रहता।

× × ×

श्री देवीजी महादेवी, इच्छाकार

ससारमें प्राणीमात्रकी अनादिकालसे यह प्रकृति हो गई है कि परके सम्बन्धसे अपना जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, मोक्षमार्ग-संसारमार्ग आदि मान रहा है। वास्तव द्रव्योंके परिणमन स्वाधीन हैं।

जो जह्मि गुणे दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे;
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं।
( समयसार, गाथा १०३ )

अर्थात् जो जिस अपने द्रव्य या गुणमें वाह्यता है वह अन्य द्रव्य या गुणमें सक्रमण नहीं होता। जब अन्यमे सक्रमण नहीं करता, तब कैसे अन्यको परिणमन करा सकता है? परन्तु हमारी दृष्टि ऐसी हो गई है कि निरन्तर अन्य निमित्त ही पर अपना भला-बुरा समझ रही है। अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'क्या निमित्त कोई वस्तु नही?' सो नहीं। निमित्त तो निमित्त ही है। परन्तु कई निमित्त तो ऐसे हैं जिनके बिना कार्य नही होता। जैसे कुम्भकारके बिना घट नही बन सकता। सहनन और चतुर्थ काल आदि ऐसे निमित्त हैं कि उनके बिना मोक्षके साधनकी पूर्ति नहीं होती। किन्तु अन्तरङ्ग कारणके बिना सर्व ही निमित्त अनुपयोगी हैं। अत., हमें अपनी आभ्यन्तर निर्मलताकी आवश्यकता है। उसमें हमारी ही पुरुषार्थता उपयोगिनी है। निरन्तर यह अभ्यास कार्यकारी है। जो हमारे आत्मामें विकृतभाव होते हैं उनका ही फल हमारी यह संसार-यातना है। वह विकृति दो

त्रिभागोंमें परणित हो जाती हैं—एक तो शुभ और दूसरी अशुभ। यही संसारका सार है। केवल शुभ-अशुभ भाव ही नहीं, किन्तु उसके आभ्यन्तरमें जो अहङ्कारकी मात्रा है वही विष है। यदि वह विष दूर कर दिया जावे तब अनायास संसारकी जड़का विध्वंस हो सकता है। उसको जिस महापुरुषने जीत लिया वह इस संसारसे पार हो गया। यदि अहं-बुद्धि मिट जावे तब ममत्व-बुद्धि हटनेमें क्या विलम्ब है? लोकमें यही व्यवहार हो रहा है कि 'मैंने यह किया।' ऐसे कर्तृत्वमें अहं-बुद्धिका ही तो भाव है। 'अथवा मैंने पराया भला या बुरा किया।' इसके गर्भमें भी वही अहं-बुद्धिका प्रसार है। यह सब अनादिमोहका विलास है। इसके अन्दर ही सम्पूर्ण विश्वका (संसारका) बीज है। इसके पृथक् करनेके लिये ही और इसी स्वत्वमें यह द्वादशांगकी रचना हुई। इसके अभाव होनेपर न तो संसार है और न संसारके उद्धारकी वासना। हे आत्मन्, एक बार तो अपनी असलियतपर दृष्टि दो। देते ही यह सब नकली स्वाँग ऐसे विलय हो जायँगे, जैसे सूर्योदयमें अन्धकार। 'मैं' 'मैं' करती हुई बेचारी बकरी वधावस्थाको प्राप्त होती है और 'मैंना' राजाओंके करोंसे पाली जाती है। अत, यह परसे जन्य (उत्पन्न) मोह आत्म-घातक है। वास्तवमें अनन्त ससारके बीजभूत अहभावको त्यागकर इसके विरुद्ध भावनाका आश्रय लेकर इसके हटानेका प्रयास ही मोक्षका बीज है। बाबाजीसे यह कह देना कि अब तो आपके धार्मिक परिणामोंकी निर्मलताके अर्थ एक स्थान ही उपयुक्त होगा। भ्रमण करनेमें लाभ नहीं। परन्तु वे महापुरुष हैं, कौन कहे?

श्री महाशय सेठ सूरजमलजी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे। संसारमें आनन्द तो नहीं है। यदि संसारमें आनन्द होता तो जितने भी संसारमें मत हैं, एक चार्वाक् सिद्धान्तके माननेवाले देहात्मवादियोंको छोडकर, सबने जो निवृत्ति-मार्ग दिखाया है, वह व्यर्थ हो जाता। आप भी इस बातको न जानते हों, सो नहीं ; परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्बलतासे संसारको दुःखमय जानते हुए भी, सुसाकी तरह (कानोंसे आँख मीच लेनेपर वह समझता है कि हमें कोई नहीं देखता) इसी स्थितिमें सन्तोष करके शेषायुकी पूर्ति कर रहे हो। यह कोई नहीं चाहता कि आप साधु हो जाओ ; किन्तु साधु-प्रतिपाद्य मार्गमें यथाशक्ति प्रवृत्ति करनेकी तो चेष्टा करो। आपका जीवन शेष (बाकी) था, तब भयङ्कर व्याधिसे मुक्त हो गये। यह तो शारीरिक व्याधि थी और इसकी औषध-चिकित्सा वैद्य या डाक्टरों द्वारा हो गई, किन्तु इससे भी भयङ्कर व्याधि आपके अस्तित्वमें है। एक आप ही क्या, सारा संसार ही उस भयङ्कर व्याधिसे व्यथित है। उस व्याधिका प्रतिकार ३२), ६४), १००), या ५००) फीस लेनेवाले वैद्य या डाक्टरोंके पास नहीं। उसकी रामबाण औषधि निर्मोही श्री वीतराग दिगम्बर साधुओं द्वारा श्रीभगवानने प्रदर्शितकी है, परन्तु खेदका विषय है कि हम संसारी मनुष्य उसपर अमल नहीं करते। इसीसे निरन्तर बाह्य सुखकी सामग्रीके सद्भावमें भी तरस-तरसकर अपने जीवनको बिता देते हैं।

प्रतिज्ञाका करना कोई कठिन नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तालुसे

जिह्वाको ताडनकर (तालूसे जीभ लगाकर) प्रतिज्ञा ले बैठता है और वाहृयमें लोक-लाजसे अपनी प्रशंसाके लोभ या भयसे उसे निर्वाह भी करता है ; परन्तु वास्तव मार्गसे दूर ही रहता है। कई तो ऐसे हैं जो लोक-लाज और प्रशंसाको चितामें दग्धकर स्वेच्छाचारी निर्भीक होकर ढोठके समान आचरण करने लग जाते हैं। आप अपनी जीवनयात्राका आद्योपान्त सिंहावलोकन कर पर-पदार्थकी लिप्सा छोडकर स्वात्म-हितमें प्रवृत्त होकर आदर्श बनो। दान देना और बात है, और त्याग-धर्म्म और बात है। हमको इतना मोह क्यों होता है ? इसका अर्थ यही है कि आपके निमित्तसे ५ वर्ष पार्श्वप्रभुके पाद-स्पर्शमे सानन्द रहकर यथाशक्ति धर्ममे चेष्टा की; और अब हमारा कर्त्तव्य है कि आपको यथोचित मार्गकी तरफ प्रवृत्त करानेका प्रयत्न करें। मनुष्य वही है-जो वह वचन कहे उसे पालन करे। यदि आप इसका परामर्श ( विचार ) करेंगे, तब तो उपदेशका आवश्यकता ही नही। सरस्वती-भवन यद्वातद्वा बन गया ; फिर भी वर्षाऋतुके प्रकोपसे पीडित है। जिन महाशयोंके हाथमे आपका काम है, वे आपकी मरजीको देखते हैं। आपकी मरजी स्वातिकी बून्द है। स्वातिकी बून्द तो हाथीमें पड़े तो गजमुक्ता हो जावे, और बाँसमे पडे तो वंशलोचन हो जावे, परन्तु नीममे पड़े तो कटुक-रस ( कड़ुआ ) ही परणमन करेगी। खेद इस बातका है कि थोड़ेसे लोभमे मकानकी शोभा बिगाड दी। इसी प्रकार कपाटोंकी दशा होगी। यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि जो वीरने देखा वही होगा। फिर

लिखनेका प्रयास क्यों ? यह भी उन्होंने देखा था। पुरुषार्थ क्यों किया जाता है? इसका उत्तर समक्षमें देंगे। हरएक विषय यदि चिट्ठीसे पूर्ण किया जावे, तब तो तुम्हारा ईसरी आना न हो। अन्तमें यही कहना है कि "बहुत गई थोडी रही" आपको जँचे सो करो ; क्योंकि आपको आय-व्ययका निरन्तर काम रहता है। हमें तो इसका पता भी नहीं। जिसका पता है उसपर अमल न होनेसे आप लोगोंकी हाँमें हाँ मिलानी पड़ती है। किसी तरह राजी रहो , क्योंकि हम लोगोंकी इस कालमें ऐसी दृष्टि हो गई है कि धर्मके रक्षक तुम लोग हो , और यह दृष्टि दोषपूर्ण है, धर्मका रक्षक तो धर्मात्मा होता है।

× × ×

श्री त्रिलोकचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

भैया, यह संसार दुःखका घर है, आत्माके लिए नाना प्रकारकी यातनाओंसे परिपूर्ण कारावास है। इससे वे ही महानुभाव पृथक् होंगे जो परिग्रह-पिशाचके फन्देमें न आवेंगे। त्यागी होकर जो संचय करते हैं वो महान् पापी हैं। हम लोग दम्भी हैं। त्यागके स्वादको नही जानते। जिसे क्षमाका स्वाद आ गया वह क्रोधाग्निमें नहीं जल सकता। इसी तरहसे, जिसे त्याग-धर्मका मधुर आस्वाद आ गया वह इस परिग्रह-पिशाचके जालमें नही आ सकता। एकबार बाईजीने कहा था कि भैया, जैनधर्मका मार्मिक बोध होनेपर नियमसे शान्तिका उदय होने लगता है। यदि आभ्यन्तर शान्ति न आई तब

केवल पुस्तकाभ्यास कायक्लेश है। यह कोई कार्य नहीं। पदार्थका परिचय होनेपर शान्तिका मूल बाधक कारण-अवश्य चला जाता है। अत. मेरी यही आप लोगोंसे एक विज्ञप्ति है कि आप हमको अपना हितू समझते हैं तो ऐसा उपाय करो कि मैं निरन्तर आपका हितैषी बना रहू। यदि मैं परिग्रही बन गया, तब न तो आपका हित कर सकूंगा और न अपना। अब विशेष क्या लिखूँ ? जो श्रीमान् बाबाजी मेरेको उपदेश देवे, उसकी रक्षा करना।

× × ×

श्री त्रिलोकचन्दजी साहब, दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला। यह भाई बहुत ही सज्जन हैं। यदि हो सके तो एक लेखक द्वारा नकल करवा दीजिये। मैं तो किसी प्रकारके झझटमें नहीं पडना चाहता। क्योंकि ससारको इन झझटोंने ही तो रुला रक्खा है। परन्तु यह तत्त्व अवश्य इससे निर्णयमें आ गया कि बिना इच्छाके भी कार्य होता है, क्योंकि अन्य प्रकार इच्छा रहती है और कार्य अन्य प्रकार होता है, इसे क्या कहेंगे ? और उसमें इच्छाका भी अश आ ही जाता है। मेरा तो यहां तक विश्वास है कि दिव्यध्वनि वर्तमानमे इच्छाके बिना हो रही है। यह निर्विवाद है। परन्तु तथ्यसे यह भी परम्परा कषायका ही कार्य है। जीव सम्बन्धी जो कार्य हैं और परके सयोगसे होते हैं, उनकी यह व्यवस्था है, केवल कार्यकी नही। जहाँ तक बने, ससार और मोक्ष-तत्त्व अपने ही में देखना। यही तत्व ज्ञान सिद्धपद तक पहुंचा देगा।

श्री सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

जिस जीवको आत्म-कल्याण करनेकी प्रबल आकांक्षा हो उसे सबसे पहले अपने आत्म-पदार्थका दृढ निश्चय करना चाहिये कि जो मैं संसार-दुःखसे भयभीत हो रहा हूं, वह क्या है? जिसमें ये भाव उत्पन्न होते हैं वही आत्मा है। क्योंकि उसीमें यह ज्ञान द्वारा प्रतीतिमें आ रहा है कि मैं दुःखी हूं। दुःख क्या वस्तु है? जो अपने अन्तरंगमें रुचता नहीं वही दुःख है; और जो अन्तरंगसे रुचता है वही सुख है। यद्यपि यह सभी जीवोंके ज्ञानमें आ रहा है परन्तु मोहके विषयमें इसमें कुछ अज्ञानता मिलती है। इससे यह जीव इन दोनों तत्त्वोंकी विपरीततासे अनुभूति कर रहा है। दुःख तो अपने अन्तरंगमें असाताके उदयसे, अरति कषायके द्वारा, अरुचि परणति-रूप होता है। उसे हमें प्रथक् करनेका, उपाय करना चाहिये। परन्तु हम, जिन पदार्थोंके अवबन्धसे हमारी यह दशा हुई, उन्हें दूर करनेका प्रयास नहीं करते। वास्तवमें वाह्य पदार्थ न तो सुखद हैं, न दुःखद। हम अपने रागादि भावोंके द्वारा उन्हें सुखदायी और दुखदायी कल्पना कर लेते हैं। कोई कहे कि निमित्त-कारण तो है? पर यह भी कहना संगत नहीं। वे तो तटस्थ ही हैं। वे कुछ व्यापार ( क्रिया ) करके हमें दुःख नहीं देते। किन्तु हमारे ज्ञानमें जो वे भासमान हो रहे हैं, वे क्या भासमान हो रहे हैं? उनके निमित्तसे जो ज्ञानमें परिणमन हो रहा है वह परिणमन ही हमारा अन्तरज्ञेय है। और वही ज्ञेय हमें कल्पनाके अनुसार सुख-दुःखका कारण हो रहा है।

परमार्थसे वह अन्तरज्ञेय भी सुख-दुःखकी उत्पत्तिमें कारण नहीं। केवल अन्तःकलुषता परिणति ही आकुलताकी जनक है। हम उस कलुषताके प्रथक् करनेका तो प्रयास ही नहीं करते जिससे सुख और दुःख होता है, किन्तु उस ज्ञेयके सद्भाव और असद्भावका प्रयास करते हैं, अथवा ऐसे उपाय करते हैं कि वह वस्तु हमारे उपयोगमें न आवे। इसके लिए कोई तो मन्द कषायी हैं जो शुभ भावोंके कारण ज्ञेयोंके ज्ञानमें आनेका प्रयास करते हैं। तीव्र कषायी जीव इसके लिए मादकादि द्रव्यका सेवनकर उन्मत्त हो दुःख मेटना चाहते हैं। कोई नाटक-थियेटर या वेश्या-नृत्यमें अपने उपयोगको लगाकर उस दुःखके नाशका उपाय करते हैं। ये सर्व प्रयत्न विपरीत हैं। क्योंकि दुःखकी जननी अन्तरङ्गमें रागादि-परिणतिकी सत्ता जब तक रहेगी, दुःख नहीं जा सकता। अत, जिन्हे इन दुःखोंसे छूटनेकी आकाङ्क्षा हो, वे रागादिकोंके नाशका उपाय करें। आप सानन्द जीवन बिताइये। जो सामग्री मिली है, उसे साम्यभावसे जानने-देखनेका अभ्यास करिये। इस कालमे आपको जो समागम हैं, उत्तम हैं। इससे उत्तम मिलना कठिन है। हमारा विचार प्रायः बाहर जानेका नही होता, क्योंकि कारण कूट सर्वत्र अनुकूल नहीं मिलते।

---

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आत्मा एक ऐसा पदार्थ है जो परके सम्बन्धसे 'संसारी' और परके सम्बन्धसे रहित 'मुक्त'—ऐसे दो प्रकारके भावको प्राप्त हो जाता हैं। परका सम्बन्ध करनेवाले और न करनेवाले हम ही हैं। अनादिकालसे विभाव-शक्तिके विचित्र परिणमनसे हम नाना पर्यायोंमें भ्रमण करते हुए स्वयं नाना प्रकारके दुःखके पात्र हो रहे हैं। जिस समय हम ज्ञायक भावमें होनेवाले विकृत भावकी कर्तव्यताको जानकर उसे पृथक् करनेका भाव करेंगे उसी क्षण शान्ति-मार्गके पथपर पहुंच जायेंगे। अतः इस पर्यायमें हम इतना ही कर सकते हैं कि विकार-भावको जानकर उससे तटस्थ हो जायें, या चरणानु-योगको पद्धतिसे उसके जो बाह्य कारण हैं उन्हें यथा शक्ति एक देश ( आंशिक ) त्याग और सर्व देश (सर्वथा या पूर्णतः) त्याग करनेका प्रयत्न करें। अन्तरंगसे बुद्धि-पूर्वक त्याग करें। करणानुयोगके अनुसार त्यागको विधि नहीं है। बुद्धि पूर्वक पर-पदार्थोंसे ममताका त्याग ही हो सकता है। क्योंकि वही अपनी परणतिको मलिनताका मूल है। पर-पदार्थोंको मलिनताका कारण मानना औपचारिक है। यही बात श्री 'प्रवचन सार' ( ज्ञेय तत्त्वाधिकार गाथा ९६ ) में स्वामी कुन्दकुन्दने बहुत स्पष्ट रूपसे दर्शाई है—

"सपदेसो सो अप्पा कसायिदो मोहरागदोसेहि;
कम्मरजेहि सिलिट्ठो बधो त्ति परूविदो समये।"

अर्थात्—संसारी जीव लोकमात्र असंख्यात प्रदेशवाला होनेसे जब मोह रागद्वेषसे कषायला होता है उसी कालमें कर्म-धूलिके रूप ज्ञानावरणादि कर्मों से श्लिष्ट (सम्बन्धित) होता है। इसीका नाम भाव-बन्ध है। अब यहाँपर देखना कि पारमार्थिक बन्ध तो आत्मामें ही हुआ और यही जीव-बन्ध है और यही आकुलताका जनक है। कर्मवर्गणा-रूप बन्ध तो व्यवहार-बन्ध है। इससे हमारी कौनसी क्षति हुई? और वस्तुस्थिति भी ऐसी है कि जिस समय आत्माके अन्तरंगसे मोह-रूप पिशाच निकल जाता है, उस कालमें यह ज्ञानावरणादि द्रव्य-बन्ध रहते हुए भी आत्मामें न तो आकुलताका जनक है और न बन्धका कारण है। इनके उदयसे जो भाव भी आत्मामें होता है वह वास्तव आत्माकी क्षतिका कारण नहीं यह तो सम्पूर्ण मोहके नाशपर निर्भर है; किन्तु एक दर्शन मोहके नाश होनेपर भी चारित्र मोहकी दशा स्वामी-हीन कुत्ताकी तरह हो जाती है—भोंकता है परन्तु काटनेमें समर्थ नहीं। अतः भाव-बन्ध ही निश्चयसे आत्मामें आपत्तिका कारण है। उसीका निपात (नष्ट) करनेकी चेष्टा करो। इसपर भी—श्रीस्वामीजीकी गाथा है—

"एसो बन्धसमासो जीवाण णिच्छयेण णिद्दिट्ठो ,
अरहन्तेहि जदीण ववहारो अण्णहा भणिदो ।"

(ज्ञेयाधिकार ९७)

अर्थात्—अर्हन्त भगवानके द्वारा मुनीश्वरों और जीवोंको निश्चय नयके द्वारा बन्धका संक्षेप बतलाया है। इस निश्चय नयसे भिन्न एक क्षेत्रावगाह-रूप जो द्रव्य-बन्ध है वह व्यवहार है। आत्माका जो राग-परिणाम है वही कर्म है और इस परिणामका आत्मा कर्ता है ; और यही परिणाम पुण्य और पापका जनक होनेसे द्वैविध्य (दो प्रकार) को धारण करता है। इस अपने निज-परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उपादाता ( ग्रहणकर्ता ) है और दाता ( त्यागकर्ता ) भी है। यही शुद्ध ( केवल ) द्रव्यको निरूपण करनेवाला निश्चय नय है। 'शुद्ध' पदका अर्थ यहाँ केवल आत्मा लेना। और जो पुद्गल-परिणाम आत्माका कर्म है, वह भी पुय-पाप रूपसे दो तरहका है। इस पुद्गल-परिणामका आत्मा कर्ता है, उपादाता ( ग्रहणकर्ता ) और दाता ( त्यागकर्ता ) है। यह अशुद्ध द्रव्य निरूपणात्मक व्यवहार नय है। ये दोनों कथन बन सकते हैं। क्योंकि द्रव्य शुद्ध और अशुद्ध पनेकर प्रतीतिका विषय है। किन्तु यहाँपर निश्चय नय ही साधकतम होनेसे उपादेय है। जब हम निश्चयसे अपने आत्मामें रागादिकको जानेंगे, तभी तो उस दोषको

दूरकर निर्मल होनेका प्रयत्न करेंगे। पुद्गलके ज्ञानावरणादि पुद्गलकी पर्याय हैं। उनका परिणमन पुद्गलमें हो रहा है। उसके न तो हम कर्ता हैं, न गृहीता हैं और न त्यागनेवाले हैं। ऐसी वस्तुस्थिति जानकर भी जो देह-द्रविण आदिमें ( देह और धन-सम्पत्ति आदिमें ) ममत्वको नहीं त्यागते, वे जीव उन्मार्गगामी बाह्य त्याग करके भी सुखी नहीं। दूर करनेका मार्ग दिखानेवाला और कोई नहीं अपनी पवित्रता ही है। अन्य तो निमित्त हैं। पदसे अधिक मूर्च्छाका त्याग होना असंभव है। श्रद्धामें सम्यग्दृष्टि आत्मासे अतिरिक्त पदार्थोंसे विरक्त है, परन्तु प्रवृत्ति तो पर्यायके अनुकूल ही होगी। अविरत और संयतकी श्रद्धामें अन्तर न होनेपर भी प्रवृत्तिमें महान अन्तर है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि अपने दोषोंको दूर न करना चाहिये। दूर करनेमें ही कल्याण-मार्गकी निर्मलता है।

× × ×

श्रीमान् प० दीपचन्दजी वर्णी, इच्छाकार

श्रीमान्‌का पत्र आया। भला आप सुलेखक हैं आपकी लेखनी द्वारा काहेको त्रुटि रहती? मैं जैसा हूँ, आपसे गुप्त नहीं। क्योंकि आप परीक्षकाचार्य हैं। किन्तु स्नेह भी कोई वस्तु है। क्या मैं इस योग्य हू? आप विज्ञ हैं। आत्म-गुणका जिनमें विकाश होता है वही पूज्य होते हैं। जहाँपर ये गुण

विकृतावस्थापन्न होते हैं वहीं अपूज्यता होती है। यही व्यवहार सर्वप्रसिद्ध है। बन्धु-आत्मा जिन रागादि परिणामोंमें फँसा है और समर्थ होकर उनसे पृथक् होनेकी चेष्टा न करे, उसे लोग क्या कहेंगे? मेरी सम्मति या अनुभव तो यह है कि यह उत्तम पुरुषोंके पादस्पर्श करनेका भी पात्र नहीं, अन्य चरित्रकी तो बात ही क्या? कलुषताकी कालिमासे जिनकी आत्मा मलिनताका आस्वाद-रूप हो रही है भला उनके ऊपर धर्म-कुसुमका रंग आ सकता है? कदापि नहीं। आज तक इस दुष्षम् दुःखमय संसारमें इस प्राणीने अपनेको जो नाना प्रकारकी यातनाओंसे अपनी आत्माको पीडित कर रखा है, उसके मूल कारणको स्व-पर-भेदज्ञानकी सुधामें नहीं धोया। धोवे कैसे? यहाँ तो निरन्तर पराई कथनीको रटते-रटते अवकाश नहीं मिलता। इसमें अन्य किसीका अपराध नहीं, अपराध केवल निजका है। संसार तो निरन्तर मिथ्या-भावोंके आश्रय इन प्राणियोंसे पल्लवित रहेगा। इसके सुधारकी भावनाका अनुचितरूपसे होना ही अपनेको गर्तमें गिराता है। यदि भावना सम्यक् सहित हो, तब यह प्राणी अपना और दूसरेका उद्धार करनेमें समर्थ होनेका पात्र हो सकता है, परन्तु यहाँ तो सुधारकी भावनाके विपरीत अह-बुद्धिपूरित आशयसे कलुषित हैं; फिर श्रेयोमार्गकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसको विज्ञ मानव अपने अन्तःकरणसे एक बार विचारे कि जिन भावोंसे जगतकी वृद्धि होती है वही भाव जगतका विनाश कैसे कर सकता है?

श्री बाबू कन्हैयालालजी, दर्शनविशुद्धि

आप 'पार्श्वप्रभुके पादतल' से शायद पहाड़पर रहना समझ गये हैं, सो बात नहीं। इसका ( मेरा ) तात्पर्य यह है कि मैं ईसरी या नीमियाँघाट रहूंगा अर्थात् पार्श्वनाथ पहाड़के पादमें, नीचेके भागमें। शायद इससे आपका समाधान हो जायेगा। भाई, संसार-सागरमें जो निमग्न है उनके दुःख दूर करनेका उपाय महर्षिगण ही निर्देश कर गये हैं। उसका यह प्राणी सेवन करे तथा उन नियमोंको आभ्यन्तरसे पालन करे। यदि पालन करनेकी असमर्थता हो, तब श्रद्धा तो यथार्थ होनी ही चाहिये। मनुष्य-जन्म संयमकी भूमि है। उसको असंयम-रूपी निद्रामें नहीं खो देना चाहिये। इसमें तो श्रद्धादि बीजादि द्वारा मोक्षफलका लाभ लेना चाहिये।

× × ×

श्रीयुत पं० पन्नालालजी साहब दर्शनविशुद्धि

मेरा यह पत्र सम्पूर्ण कटरा-मण्डलीको श्रवणगोचर करा देना। सागर-विद्यालय एक प्राचीन संस्था है। और उसका उद्देश्य है संस्कृत विद्याकी उच्च शिक्षा देकर जैनधर्मका गौरव छात्रोंको हृदयंगम कराना। लौकिक विद्याकी मुख्यता नहीं। परन्तु आज कतिपय महाशयो द्वारा उसके विपरीत प्रचार हो रहा है। अस्तु, खेद इस बातका है कि समाजके गण्य-मान्य सिंघईजी आदि होते हुए यह अनुचित कार्य हो गया। जितने उच्च कक्षाके छात्र थे उनको सार्टिफिकेट दे दिया जावे। क्या इतने बड़े समाजके सत्व-कालमें एक पाठशाला न चले?

यदि संस्कृतकी मुख्यता समाजको इष्ट नहीं है तब फिर सतर्क सुधा तरङ्गिणी, नामको परिवर्तन कर जो मनमें आवे सो करिये। आमदनी क्या होती है, कोई देखनेवाला नहीं संस्था रजिस्टर्ड है ; उसकी व्यवस्था न होना आपत्तिजनक है।

× × ×

श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

आपकी जो दशा है, उससे हमारी कहीं जघन्य है। ऐसी दशामें क्या उपदेश लिखें? शास्त्रकी बातें लिख देना और बात है। अन्तरङ्ग तद्रूप परिणमन होकर जो बात लिखी जावे, वह तो वास्तविक ग्रहण करने योग्य है। जो ग्रन्थोंमें आत्म-हितकी चर्चा है, उसे उलट-पुलटकर लिख देनेमें कोई विशेष सार नहीं। भीतरसे जो उत्पन्न हो उसे लिख देना और बात है। हमको तो ४० वर्ष स्वाध्याय करते हो गये और अनेक संवत्सर व्रत पालते हो गये; परन्तु शान्तिका अंश भी हमारे आत्मामें नहीं आया। पुराणोंको बाँचकर लोगोंको वचना करते-करते आयु बीती जाती है। अतः अन्तरङ्गसे राग-द्वेष जीतनेका बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करना ठीक है। केवल कथा और शास्त्र-स्वाध्याय ही इनको दूर करनेका कारण नहीं ; पर पदार्थोंमें जो इष्टानिष्ट कल्पना होती है उसे न होने देना पुरुषार्थ है। परको पर जानना ही इसके दूर करनेका मुख्य कारण है। अपनेको ज्ञान-दर्शन-गुणका आधार जानकर परसे ममत्व हटानेका प्रयत्न ही मुख्य प्रयत्न है। मुँहसे कह देना अन्य बात है और अन्तरगमें वैसी प्रतीति हो जाना अन्य बात

है। हमारी ऐसी प्रकृति बन गई है कि चार आदमी मिले और अध्यात्म आदि विषयपर दो-चार घंटा चर्चा कर अपनी २ कला दिखाकर समयको सदुपयोगमें लगाना ही हम अपना ध्येय मान बैठे हैं। परन्तु मेरी सम्मतिमें इस ऊपरी कथनीसे आत्म-हित बहुत दूर है। चित्तका सन्तोष कर लेना अन्य बात है और आभ्यन्तर-शान्तिका रस पान करना अन्य बात है। जबतक आकुलता-विहीन अनुभव न हो, तब तक शान्तिका आभास नहीं। अतः अब इन बाह्य आलम्बनोंको छोड़कर स्वावलम्बन द्वारा इन रागादिकोंकी उपक्षीणता करनेका उपाय करना ही अपना ध्येय बनाना और एकान्तमें बैठकर उसीका मनन करना।

× × ×

श्रीयुत रामस्वरूपजी, दर्शनविशुद्धि

श्रीपपौराजीके समाचार जानकर अति खेद हुआ। आजकल जो द्रव्य उपार्जनकी पद्धति है उसके आभ्यन्तरमें अति कलुषता है, और उसका ही यह परिणाम है कि धर्म-कार्यों में अति बाधाएँ आती हैं। जब कि उपार्जनमें कलुषता और व्ययमें दुरभिमान है तब, जहाँ कषाय ही का साम्राज्य है वहाँ शान्ति नहीं। यदि कोई ऐसा कहता भी है तो भी धर्म-बुद्धिसे नही, केवल इसलिए कि मेरी बात रह जावे। कहाँ तक कहा जाय, सर्वत्र अन्धकार है। यह तो ससार है। अपना कल्याण करो। इसकी विवेचनामें भी कुछ लाभ नहीं। तत्त्वोंसे अपनी कलुषता मिटानेका उपाय करो। वही मोक्ष मार्गका समीचीन भाव है।

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, दर्शनविशुद्धि

सानन्द समय बिताना और जहाँ तक बने निराकुलताका लक्ष्य त्यागमें रखना। जो भी कार्य करो अन्तिम फल उसका शान्तिसे देखना। यहाँ तक ही वस्तुकी व्यवस्था है। जिसने इस व्यवस्थाको जान लिया वह पर्यायकी सफलता पानेका भागीदार हो गया।

× × ×

आप वहाँ निमित्तोंकी कटुतासे गृहवास छोड़ना चाहते हो, सो, भाई साहब, इस दुष्षमकालमें सर्वत्र निमित्तोंमें विपर्ययता हो रही है। यहाँ रहकर मुझे अच्छी तरहसे अनुभव हो गया कि अपनी परणतिको पवित्र बनानेकी चेष्टा करना ही बुरे निमित्तोंसे बचनेका उपाय है। निमित्त कभी भी बुरे नहीं होते। शख पीत नहीं होता ; परन्तु कामला रोगवालेको पीत भासमान होता है। इसी तरह हमारी जो अन्तस्तल-स्थित कलुषता है वही निमित्तोंको इष्टानिष्ट कल्पना करा रही है, और जब तक यह कलुषता न जावेगी तब तक, संसारमें भ्रमण कर आइये, शान्तिका आंशिक भी लाभ न होगा। क्योंकि शान्तिको रोकनेवाली कलुषता तो वहीं बैठी हुई है, क्षेत्र छोड़नेसे क्या होगा ? जैसे रोगी मनुष्यको एक मामूली घरसे निकालकर एक दिव्य महलमें ले जाया जाय, तो क्या वह निरोग हो जावेगा ? अथवा काँचके नगको स्वर्णमें पच्ची करा दीजिये, तो क्या वह हीरा हो जावेगा ?

पत्र आया। वही वृत्त जाने सो यह बारम्बार पिष्टपेषण ही है। आप वही लिखते हैं और वही उत्तर हम देते हैं। एकबार चित्त-वृत्तिकी चञ्चलताको छोड़ो और स्वोन्मुख हो। आज तक परोन्मुख रहे और उसका फल भी जो पर-वस्तुका होता है, वही हुआ। सर्व-संगतिको छोड़कर एक स्वात्म-संगति करो। वही सर्व शान्तिकी जड़ और सर्व प्रश्नोंके उत्तर करनेमें समर्थ है। जो दुःख आपको है वही तो हमको है। यदि न होता, तो कदापि हम उत्तर न देते। उत्तर देना ही इसमें प्रमाण है। जैसे माँगनेवाला दुःखी है वैसे दाता भी करुणाक्रान्त होनेसे दुःखो है। हाँ, दुःखमें कारण पृथक्-पृथक् अवश्य हैं। पर हैं दुःखी दोनों। मेरी तो श्रद्धा यहाँ तक है कि जहाँ तक अभिप्रायमें परोपकारिणी बुद्धिका सद्भाव है, चाहे वह दर्शन मोहके सद्भावमें हो और चाहे चारित्र मोहके सद्भावमें, आत्मामें दोनों ही बाधाकारिणी हैं। अब ऐसा भाव उत्पन्न करो कि परसे कल्याण होनेकी आकाक्षा ही शान्त हो जावे। क्योंकि अभिलाषा अनात्मीय वस्तु है। इसका त्यागी ही आत्म-स्वरूपका शोधक है।

× × ×

समता भाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोंका मुख्य कर्तव्य है। और तो सर्व शिष्टाचार हैं। उपयोग लगानेकी आशासे सर्वत्र जाइये, परन्तु अन्तिम बात यही है कि चित्त वृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्न ही सराहने योग्य है।

आपके पत्रसे आपके विचार जानकर परम प्रमोद होता है। अब विशेष क्या लिखूँ? इन्हीं विचारोंको दृढ कर लो। यही मोक्षका मार्ग है।

× × ×

हम सानन्द सागर पहुंच गये। और यहाँसे ५ या ७ दिन में चलेंगे। बाईजीके कारण आना पड़ा। संसारमें अन्यत्र शान्ति नहीं है, अपने पास है। अन्यत्र खोजनेकी चेष्टा व्यर्थ है। आप सबसे पहले जहाँ तक बने, प्रत्येक वस्तुसे मोह हटानेकी चेष्टा करें और चित्तमें हमेशा शुद्ध परिणमनका अभ्यास करें। बाह्य पदार्थोंसे स्वात्म-हित नहीं होगा। अपने हो भीतर शान्ति खोजनेका निरन्तर प्रयास करो। अन्य किसी के ऊपर बुरा-भला माननेका अभ्यास छोड़ो। मोहकी दुर्बलता भोजनकी न्यूनतासे नहीं होगी, किन्तु रागादिके त्यागनेसे होगी।

× × ×

श्रीयुत लाला मंगलसैनजी दर्शनविशुद्धि

दशधा धर्म सानन्द हो गया। जब चित्तमें आकुलता हो, पुस्तक लेकर बागमें चले गये। वहीं निर्वाण भूमि है। जो लोग विशेष रूपसे धर्मके सम्मुख नहीं हैं उनके लिये तीर्थ यात्रा और साधु-समागम धर्मके कारण हैं। उसको सबोंने अपना लिया। सानन्दका समय तभी जावेगा जब कुटुम्बी जन तथा शत्रु और मित्रोंमें समता आ जायेगी। घर छोड़नेमें

कुछ नहीं। हर जगह घर बनाना पड़ेगा; क्योंकि अभी आपकी इतनी कषाय नहीं गई जो अपमान और मानमें समानता आ सके। अभी तो भूमिका ही आरम्भ है। यदि नींव कच्ची होगी तो महल नहीं बनेगा। अतः जहाँ तक बने, बगीचामें फूँसकी झोंपडी बनाकर अभ्यास करो। कभी-कभी शाहपुर खातौली जाकर अभ्यास करो। ऊपरी लिबाससे अन्तरंगकी चमक नहीं आती।

× × ×

साता और असाता ही इस संसारमें है। दो में से किसी एकके उदयमें ही यहा रहनेकी पद्धति है। इसमें हर्ष-विषाद करनेसे यह पद्धति निरन्तर रहती है; निकलनेका मार्ग नहीं मिलता। जो महापुरुष इन अन्यतर परिणतिसे हर्षित और विषाद युक्त नही होते वे ही इससे छुटकारा पा जाते हैं। मार्ग कहीं नहीं और सर्व जगत्‌में है। चित्तके व्यापारमें थोडे परावर्तनकी आवश्यक्ता है। निरुद्देश्य ( या गुमराह ) रहनेसे संसार-वनसे पार होना अति कठिन है। विना कुतुबनुमाके दिशाओंका ज्ञान नही होता और विना दिशा-ज्ञानके अज्ञानान्धकारसे व्याप्त संसार-अटवीसे भला कौन पार हो सकता है? अतः यहा, वहा या मेरे पास आनेका विकल्प छोडकर एकबार स्वोन्मुख होकर स्वीय रत्न ( आत्मज्ञान या रत्नत्रय ) की खोज करो, वह अपने ही में है। आप ही आप शान्त चित्तसे कुछ काल अभ्यास करो। सर्व आपत्तियोंका नाश अनायास हो जायगा। अब तो परकी संगति प्राप्ति और भी अलाभ दात्री है। यह भ्रम भगा दो, आप ही में स्वयंभू पद है।

श्रीयुत लाला मंगलसैनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कर्मोदयकी प्रबलता देखकर अशान्त न होना। अर्जित कर्मका भोगना और समता भावसे भोगना—यही प्रशस्त है। संसारमें किसीको शान्ति नहीं। केलेके स्तम्भमें सारकी आशा के तुल्य ससारमें सुखकी आशा है।

× × ×

श्रीयुत मगलसैनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पराधीनताकी श्रद्धा ही ससारका मूल है। यों तो जो कुछ सामग्री हमारे पास है, वह सर्व कर्मजन्य हैं; परन्तु श्रद्धा वस्तु कर्मजन्य नहीं। उसकी उत्पत्ति कर्मोंके अभावमें ही होती है। इसकी दृढता ही संसारकी नाशक है। औदयिक भाव ही कर्मबंधके जनक हैं और वे भाव भी केवल जो मोहनीयके उदयमें होते हैं, वही हैं; शेष कुछ नहीं कर सकते। वचनकी चतुरतासे कुछ लाभ नहीं, लाभ तो आभ्यन्तरकी परिणतिके निर्मल होनेसे है। जहा जाओ, वही परिणतिकी मलिनता और निर्मलताके निमित्त हैं।

केवल अन्तरङ्गकी बलवत्ता ही श्रेयोमार्गकी जननी है। समवसरणमें असख्य विभूतियोंके रहने पर भी जीव अपने कल्याणके मार्गमे सावधान रहता है, और निर्जन स्थानमे रह कर भी शक्तिहीन अकल्याणका पात्र बन जाता है।

× × ×

श्रीयुत मंगलसैनजी योग्य, दर्शनविशुद्धि

आपका उत्साह प्रशसनीय है। त्याग धर्ममें कायरताका स्थान नहीं। हम तो जैसे हैं, हम जानते हैं, परन्तु मार्गके अनुयायी हैं।

आप मार्गके अनुयायी बनो। व्यक्तिके अनुयायी बनने में कोई लाभ नहीं। जहाँ तक बने, आभ्यन्तर परिणामोंके आधारपर ही वाह्य त्याग करना। परिग्रह रखनेकी तो मैं शिक्षा नहीं देता। जितना भी भीतरसे त्यागोगे, उतना ही सुख पाओगे। जैन-धर्ममें परिग्रहका त्याग बताया है, ग्रहण करनेका उपदेश नहीं। कषायोंको कृश करनेका उपदेश है। जो समय इस विचारमें लगे, वही प्रशस्त है। अपनी भूल ही से तो यह जगत है। 'भूल मिटाना' धर्म है। पर-पदार्थके साथ यावत् सम्बन्ध है, तावत् ही ससार है। घरसे सम्बन्ध छोड़कर अन्य से सम्बन्ध करना अति लज्जास्पद है। हमारा विचार भी निरन्तर त्यागकी ओर जाता है, परन्तु अन्तरगकी मलिनता कुछ भी होने नही देती। कहनेमे और करनेमें बहुत भेद है। अनेक जन्मके अर्जित कर्मोंका एकदमसे दूर जाना सम्भव नहीं। अतः शांतिसे त्याग करो। जितनी शान्ति त्याग करते समय रहेगी, उतनी ही जल्दी ससारका नाश होगा।

× × ×

श्रीयुत मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

'प्राणान्त होगये'—यह शब्द हितकर नही। उसका क्या खेद जो वस्तु नियमसे होनेवाली है? उसका विचार ही व्यर्थ है। उत्तम काममें वासना होना ही ससार-बधनको काटनेवाला आरा है। घरसे बाहर जानेमे मैं तो कोई लाभ नहीं समझता। लाभ तो आभ्यन्तर उदासीनतामें है। पराधीनता कदापि सुखद

वस्तु नहीं। मैं सेवा-धर्म नौकरीको अति निन्द्य समझता हू। अपनी योग्य व्यवस्थाकी कुटियासे पराधीनताका स्वर्ग भी अच्छा नही परन्तु आपने तो ऐसी कल्पना कर रखी है कि अन्यत्र ही आप कल्याणका पथ देख रहे हैं। आपकी इच्छा। घर छोड़ना अच्छा नही। वहा जो आपकी आय है उसे भाइयोंसे मेल कर व्यवस्थित करें। जब चित्त घबड़ावे तो दो-चार दिन शाहपुर या खतौली जाकर तत्त्व चर्चा करें।

× × ×

श्रीयुत मगलसैनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अभी आप स्वय ही अपनी भाव-सन्ततिका अच्छी तरह विचार करो। तब अनायास यह समझमें आ जावेगा कि ये भाव त्याग धर्मके बाधक हैं। आपके ध्यानमें न आवे, तब हम से पूछो। हम अपने अनुभवके अनुसार बतावेंगे—समान है, या अन्तर है। 'क्या करना होगा?' यह प्रश्न तो ऐसा हैं जैसे एक नवोढा गर्भवती अपनी सासुसे पूछती है और कहती है—जब हमारे सन्तानोत्पत्ति होगी, जगा देना। 'जितने' मलिन परिणाम होगे, उतने ही अधिक साग्रहकर बनोगे। निर्मलतामे भयका अवसर नही। यदि यह होता, तो यह अनादि-निधन मोक्ष मार्ग कदापि विकाश-रूप न होता। आजकल निर्मलताका अभाव है अत मोक्ष मार्गका भी अभाव है। पर-पदार्थमे जिस दिन हृदय से यह बात दूर हो जावेगी कि ये न मोक्षमार्गके साधक हैं, न बाधक हैं, उसी दिन मोक्ष-महलकी नीव धरी गई। समझिये जब तक वह श्रद्धा नही, तबतक यह कथा सकल्प मात्रमें मोक्ष की साधक है। आप आओ, इसमें हमें कोई आपत्ति नही;

किन्तु हमारी तो अन्तरंगसे यह सम्मति है कि जो उस द्रव्यको रेलमें व्यय न करके धर्म ध्यानमें व्यय करना श्रेयस्कर है। मनकी शल्यको निष्कासन कर व्रती बनो। वर्णीजी हों, चाहे दिगम्बर गुरु हों, कोई भी व्रती बनानेमे समर्थ नही। मनकी निःशल्य वृत्ति ही करणानुयोगके अनुसार भोजनादि करनेमे व्रती बना देगी। कायरताके भाव छोडो और सिंह बनो। मोक्ष मार्गमें वही पुरुष गमन कर सकता है जो सिंह-वृत्तिका धारी हो। वहां श्रृगाल वृत्तिवालोंका अधिकार नही। आपकी इच्छा हो सो करो, परन्तु जो करो, सो अच्छी तरह परामर्श (विचार) कर करो। व्यक्त करना अच्छा नही। यदि इस भयसे व्यक्त करना है कि लोकोंके भयसे व्रत पालेंगे तब वह व्रत नही।

× × ×

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसैनजी, दर्शन विशुद्धि

आपने लिखा कि गृहस्थीमें राग द्वेष नही घटते, सो ठीक है। किन्तु जबतक अन्तरंग निर्मलताकी आंशिक विभूतिका उदय न हो, तबतक गृहस्थीको छोड़नेसे भी रागादिक नहीं घटते। यह नियम नही कि घरको छोडनेसे ही रागादिक घट जाते हैं। आपने जो अनुभव किया वह एक देशीय है। मेरा अनुभव है कि घर छोडनेसे वर्तमान कालमें रागादिक बढते हैं। उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। हां, यह अवश्य है कि राजमार्ग यही है कि वीतराग मार्गके अर्थ नियमसे परिग्रह त्यागकी आवश्यकता है, परन्तु साथमें यह भी नियम है कि

बाह्य योग्यताके अनुकूल ही त्याग होता है। हमारी आत्मा इतनी कायर हो गई है कि निमित्तोंके संग्रह ही में मोक्ष मार्ग को कुआ चाहती है! आप घरसे उदासीन रहे। बाहर रहो। कौन रोकता है? परिग्रह भी निर्वाहके अनुकूल रखना अनुचित नहीं, ठीक ही है। आप जानते हैं कि अष्टम-प्रतिमा तक परिग्रह रहता है। यदि आपका अर्जनमें उपयोग नहीं लगता, मत करो। परन्तु फिर जैसे आजकलके त्यागी हैं क्या उस तरहसे विचरने का अभिप्राय है या कुछ परिग्रह रखकर बाहर रहनेका अभिप्राय है? स्पष्ट लिखो। फिर हम सम्मति देंगे। आजकलकी हवा विलक्षण है, इसलिये प्राचीन भाषाके ग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करना कल्याणका मार्ग है। अब मेरा स्वास्थ्य भी प्रति दिन जरोन्मुख है, किन्तु सन्तोष ही करना लाभदायक है। आप जहा तक बने अन्तरंगकी निर्मलताकी वृद्धि करना। उसके लिये एकत्वकी भावना ही कल्याणकी जननी है। कल्याणका मार्ग स्थानोंमें नही तथा कपडे और घर छोडनेमे भी नहीं। जहा है, वहीं है।

× × ×

श्रीयुत मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला। ससारमें ऐसा ही होता है। जहांतक बने अच्छे होनेपर शान्तिसे काल बिताओ। यातायातमें कुछ नही होता। मोक्षमार्ग निकट है, दूर नही। परके आश्रयसे वह सदा दूर रहा है और रहेगा। और जिन भाग्यशाली वीरोंने पराश्रितकी भावनाको पृथक् किया, वे ही वीर अल्पकालमें उसके पात्र होंगे।

मांगनेसे भीख तक नहीं मिलती, फिर भला मोक्ष मार्ग—जिससे सदाके लिए संसार-बन्धन छूट जावे—जैसा अपूर्व पदार्थ क्या दानका विषय हो सकता है? आप पथ्यसे रहना, इसीमें हित है। आत्मशुद्धिके भी कारण यदि रागादिकी मन्दता होती जावे, तो कालान्तरमें यही परिणाम हो जाता है। परन्तु यहा तो कथा ही में तत्त्वकी प्राप्ति मानकर हमलोग सन्तोषित हो जाते हैं।

* * *

श्रीयुत लाला उग्रसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि मेलोंमें कष्ट रहा, सो, मेलोंमे यही होता हैं। शिक्षाके विषयमे लिखा, सो उद्देश्यके अर्थ तो मेला था नही, वहा तो अभिप्राय अपने का था, सो हो गया। तीर्थका लाभ निवृत्तिपरक है। वह उसके होता है जो उस उद्देश्य से जावे। आप जानते हैं और देखा होगा कि वह प्रान्त सीधा है तथा विलासिता भी वहा नही। बुन्देलखण्डमे विलासिताके कारण--पश्चिमी शिक्षा तथा महान् शहर और लाला-रईसोंके निवास आदि—कुछ भी नही हैं। ऐसी अवस्थामे कष्ट होना स्वाभाविक है, तथा इतने आदमियोंके पानी आदिका प्रबन्ध होना कठिन हैं। इससे जो कष्ट होना था सो हुआ। किन्तु कष्टमे जो सहिष्णुता रही वह पुण्य-बन्धका कारण थी।

कल्याणका मार्ग तो सरलतामे है। अत आप जहा तक बने मन-वचन-कायके व्यापारोंको सरल करनेकी चेष्टा करिये। अधिक परिग्रह महान् कष्टका कारण है। इसमें निर्मलता

आनी सरल नहीं। अभिमान और विषयकी प्रचुरता निरन्तर रहती है तथा उसकी सिद्धिके अर्थ क्रोधादिक कषायों के द्वारा निरन्तर धनाढ्य लोग दग्ध रहते हैं। इससे यदि आपके उदयने वह वस्तु आपसे छीन ली, तो इसमें आप हर्ष मानिये, और हर्ष तब होगा जब सन्तोष करोगे। "सन्तोषात्पर धर्मं नास्ति।" हरिश्चन्द्र अभी बच्चा है, अभी कुछ समझता नहीं। उसे तो उचित था कि मुजफ्फनगरवालोंका वजीफा लेकर काशी पढता; परन्तु अभी मानता नहीं, अन्तमें मानेगा। पर इतने दिन व्यर्थ जायेंगे।

आप सर्व विकल्पोंका छोडकर सानन्द स्वाध्याय करिये, और जो कुछ उदयमें आया है उसे सन्तोषपूर्वक भोगिये। लाला रघुवीर सिंहसे कहिये कि थोडा-बहुत समय अब धर्मके काममें लगावें। उन्हें छहढाला पढा देना। यदि आजीविकाका साधन न्यायसे हो, तब क्यों अन्यथा प्रवृत्ति की जावे? संसारमें जितनी विलासिता जिसके न्यून होगी, वही अधिक सुखी होगा। दुःखका मूल विलासिता (प्रिय वस्तु) है। जिसने इसके जालको तोड दिया, वही महापुरुष है।

\+ \+ \+

श्रीयुत मगलसैनजी योग्य, दर्शनविशुद्धि

चित्तमें जैसे-जैसे पर-पदार्थोंकी मूर्छा घटती जायगी, वैसे-वैसे शान्ति-उदयरूप होगी। आप जानते हो कि इस रोगसे आप ही दुःखी नहीं, जब तक मोहका अभाव नहीं; हीन-पुण्यवान्‌से लेकर महान् पुण्यशाली तक दुःखी हैं। सुख

न संसारमें है, न मोक्षमें ( सिद्धशिलामें ) और न कर्मों के सम्बन्धमें है, न कर्मों के अभावमे ; सुख तो अपने पास है । और न उसका यह पुद्गल-द्रव्य रोकनेवाला हा है। हम ही अज्ञानी होकर उसके विषयमें नाना प्रकार यद्वातद्वा कल्पना करके, उसको अनेक रूप देकर अनुभव करते हैं। परमार्थसे वह नानारूप नही। अखण्ड चैतन्यके साथ अनादिकालसे तन्मय है। परन्तु कामला रोगी जैसे शखमे स्वेतताका तादात्म होनेपर भी पीत-शखका ही अनुभव करता है, उसीके समान निराकुल-सुखका आत्माके साथ तादात्म होते हुए भी, हम आकुलता-रूप ही उसे अनुभवका विषय करते हैं। इस भूलका फल अनन्त ससार ही होता है। अत· अब समस्त पर-पदार्थों की ओरसे चित्त-वृत्तिको स कोच कर आत्माकी ओर लगाओ। हममे स्वय इस विषयमे दृढता नही आई, इसीसे पत्र देते हैं। अन्यथा क्या आवश्यकता थी ?

× × ×

श्रीयुत मगलसैनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

भइया, पत्रमे सार-बोधक अल्प शब्दोंमें अभिप्राय आना चाहिये। जितना समय तीन पन्नेके पत्र लिखनेमे लगाया, उतना समय यदि निज परिणामोंकी समालोचनामें लगाते, तो जैसे-जैसे विकल्प-ज्वाला शान्त होती जाती वैसे-वैसे शान्ति मिलती। स्वय जिसके हम कर्त्ता बन रहे हैं, यदि चाहें तो उसे हम ध्वस भी कर सकते हैं। जो कुम्भकार घट बना सकता है, क्या उसे वह फोड नही सकता ? इसी तरह जिस

संसारको हमने सञ्चय किया, यदि हम चाहें तो उसका ध्वंस भी कर सकते हैं। मेरी तो यह श्रद्धा है कि सञ्चय करनेमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता है। ध्वस करनेमें बहुत सरल उपाय है। मकान बनवानेमें बहुत काल और बहुत जनोंकी आवश्यकता होती है, ध्वसमें उतना समय और उतने जनोंकी आवश्यकता नहीं होती। आप समझदार होकर हमारा आश्रय चाहते है, यह क्या उचित है? अपने पुरुषार्थको सम्हालो, स्वप्न-दशा त्यागो और धीरतासे काम लो। ज्ञानाभ्यासमें समय लगाओ। लौकिक कार्योंको उदासीन रूपसे करो। ससारको स्वप्नावस्था मानो। पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना छोडो। स्थान-विशेष तो जहाँ अन्तरङ्गमे स्वात्म स्फूर्ति हुई; वही है। दूसरे प्राणियोंकी ही कथा मत करो, अपनी कथा करो, और देखो कि आज तक मैं किन दुर्बलताओंसे ससारमें रुला? और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करो यह मेरी निजी सम्मति है। आप सब लोग एकबार गावके बाहर स्वच्छ स्थानमें ही तत्त्व-विचार करें। चाहे शाहपुर हो या सलावा, खातौली आपका गाँव हो, केवल भोजन गाँवमे कर जाओ। अनन्तर अपना सारा समय तात्त्विक चर्चा और साथ ही साथ रागद्वेषकी कृशतामे लगाओ। बाहर (हस्तिनागपुर आदि) जाकर भोजनादि सामग्रीके फेरमें न पडो। 'मन चगा तो कठौतीमें गगा'—यदि मनमें शान्ति और पवित्रताका उदय है तब गाँवके बागमें ही हस्तिनागपुर है। यदि निराकुलता-पूर्वक एक दिन भी तात्त्विक विचारसे अपनेको भूषित कर लिया तब अपने ही में तीर्थ और

तीर्थंकर देखोगे। एकबार यथार्थ भावनाका आश्रय लो और इन कलंक भावोंकी ज्वालाको सन्तोषके जलसे शान्त करो। इससे अपने ही आप अहं-बुद्धिका प्रलय होकर 'सोऽहं' विकल्पको भी स्थान मिलनेका अवसर न आवेगा। वचनकी पटुता, कायकी चेष्टा, मनके व्यापार—इन सबका वह विषय नहीं। आप यही आरोप हमपर करते होंगे, परन्तु हम भी उस जालमें हैं, जिसमें आप हैं। फिर हमारी प्रवृत्तिपर ध्यान न दो। यदि आप लोग सत्य-पथके अनुयायी हैं, तब अपने मार्गसे चले जाओ। यही परमपदका पथ है। बाबाजीसे कहना कि महाराज, निस्पृह होकर आपको खातोलीका रहना बाधक नहीं। जहाँ सूरज है वही दिन है। जहाँ निस्पृह त्यागी रहते हैं, वही निमित्त अच्छा हो जाता है। जहाँ शान्त परिणामी निवास करता है, वही स्थान तीर्थ है। जहाँ निमित्त अच्छे हों वे ही तीर्थ हों, सो नहीं। जहाँ साधुजन हैं, वही तीर्थ है। विशेष क्या लिखें? यह सर्व लिखना भी हमारे मोहका विलास है। मूर्च्छाकी न्यूनतामें ही स्वात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

× × ×

श्रीयुत महाशय लाला मगलसैनजी, दर्शनविशुद्धि

आपने जो ऐसा विचार किया सो सर्वथा उत्तम है। अब थोड़ेसे जीवनके लिये आप जैसे स्वतन्त्र धार्मिक मनुष्यको पराधीनतामें जीवन विताना अच्छा नहीं। उदयाधीन जो होता है, होगा। जो कुछ है, उसीमें पुरुषार्थ करो, उसीसे

सर्व कुछ होगा। शान्तिका मूल कारण यह है कि चित्तमें जो, क्षोभ है उसे त्याग दो और जो कुछ मिलता हो उसीमें सन्तोष करो। और स्वप्नमें भी पराये कल्याणकी भावना न आना श्रेयस्कारिणी है। विशेष क्या लिखू ? आप जहाँ तक बने, सानन्द जीवन बिताइये। स्वप्नमें भी आकुलता न करियेगा। बाबूजीके लिये भी स्वाध्यायका प्रेम होना हितकारी है। लौकिक वैभव आदि कोई भी सुखका साधन नही। उनसे शका-समाधान करके आप निश्चय करा दीजिये कि बिना आभ्यन्तर बोधके हित होना अशक्य है। लौकिक प्रभुतावाले कदापि आभ्यन्तर सुखी नहीं हो सकते। वर्तमानमे जितने प्रभुता शाली हैं, वे अत्यन्त दु खी हैं। सबको यह चिन्ता है कि हमारी रक्षा कैसे हो ?

एक मासमे एकबार मौन रखनेका अभ्यास करो। संसारमें यावत् ( जितने भी ) परिणाम होते हैं, स्वाधीन होते हैं। यह प्राणी, व्यर्थ कर्त्ता बनकर सबको अपने अधीन मान दुखी होता है। अनादिमे कोई भी आजतक ऐसा दृष्टान्त देखनेमें नहीं आया कि एक भी परिणमन किसीने अन्य-रूप परिणमाया हो ! फिर भी, यह जीव मोही होकर ऐसी विपरीत चेष्टा करता है। फल उसका स्वय दु खी होना है। 'हे प्रभो, यह सुमति दो कि अब हम इस कुचक्रसे बचें।' फिर भी वही बात, प्रभु कौन हैं देनेवाले ? स्वय इस विपर्य्यय-भावको छोडकर प्रभु बन जाओ। प्रभु जो हैं, सो प्रभु नही बना सकते ; किन्तु प्रभुने जिन परिणामोंसे प्रभुता प्राप्त की है उन परिणामोंका आत्माके

साथ तादात्मकर हम स्वय प्रभु हो जायेंगे और इतर प्राणियोंके कल्याणमें निमित्त-कारणसे 'णमो अरहंताण' की जाप्यके विषय होने लगेंगे। यह सब होना स्वाधीन है, परन्तु यह प्राणी अनादि कालसे पर-पदार्थोंके साथ अभेद-बुद्धिकी कल्पनाके साथ एकी-भाव कर रहा है।

× × ×

श्रीयुत महाशय सिघई कुन्दनलालजी, दर्शनविशुद्धि

आप, जहा तक बने, विषय-कषायके अभावका प्रयत्न करिये। अन्य कोई भी कल्याण-पथका पोषक नहीं। हम सभी ससारी जीव हैं। आपके मोह कर्मके लिये जो कर्म हैं यह हमारा अपराध नही आप स्वय अन्तरगसे उसमें तल्लीन हो जाते हैं। उसे निकालनेका मार्ग यही है कि इन वाह्य-पदार्थों से ममता त्याग दी जावे। ममत्व-त्यागका यह अर्थ है कि अपनेको उन पदार्थोंसे विशेष आसक्ति छोड देनी चाहिये।

× × ×

श्रीयुत महाशय कुजीलालजी, योग्य इच्छाकार

शरीरकी सामर्थ्य ऐसी नही, परन्तु अन्तरगका कषाय कष्ट जनक है। प्रबन्ध तो सब उदयाधीन हो जाता है। कल्याण का मार्ग तो निराकुलतामें है। हम लोग आकुलता-पूर्वक आनन्दका स्वाद लेना चाहते हैं। वचनकी चातुरतासे अभीष्ट की सिद्धि बहुतेरे मनुष्य चाहते हैं, सो असम्भव है। देखिये श्री अरहतका भी कल्याण दिव्यध्वनीसे नही हुआ, किन्तु उसे निरोध करना ही पडा या प्रकृतिने स्वयमेव कर दिया। अतः

जिस जीवके स्वात्म-कल्याणकी इच्छा है उसे कषाय निग्रह-पूर्वक योग निग्रह करना चाहिये।

× × ×

श्रीमान् त्यागी परशरामजी, इच्छाकार

आपको तो वही समागम है जिस समागमको अच्छे-अच्छे पुरुष चाहते हैं। यह आपकी सज्जनता है जो आप हमसे भी कल्याण किया चाहते हैं। आप तो हम जैसे श्रोता हैं। हम तो अगत्या श्रीपार्श्वप्रभुके पादमूलमे ही आयु पूर्ण करेंगे। क्योंकि पोतके पक्षी हैं। कल्याणका मार्ग तो पास ही है, कहीं रहिये। निमित्तकी योग्यता भी पास ही है; क्योंकि सञ्ज्ञीपना और निरोगता जैनधर्ममें प्रेम, उत्तम क्षेत्र आदि सर्व कारण मिल ही रहे हैं। धर्मकी वृद्धिके साधन कल्याण-मूर्ति बाईजी तथा कल्याण-भवन आदि सर्वसे आप सम्पन्न हो। अब परिणामोंकी निर्मलता, जो मुख्य धर्म साधनका कारण है, सो आपकी ही है। यदि उसमे कुछ विषमता आती हो तब उसे दूर करनेकी चेष्टा करिये। विशेष क्या लिखूं।

+ + +

श्रीयुत दाऊजी, दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि संसारका हाल तो आप जानते हैं, सो ठीक है। मोक्षका हाल जानते तो इस भवचक्रसे निकल जाते। आप हमारे हितेच्छु हैं जो हितकी सुझाते हैं। जो मनुष्य संसारका हाल भूल जाता है वही संसारसे पार होता है। आजतक हम इसी संसारके पात्र हुए। वास्तवमें संसार कोई

अन्य वस्तु नहीं। हमारी जो राग परिणति है वही संसार है; और इसका अभाव ही समय सार है। धन्य है उन आत्माओंको जिन्होंने अपनी परिणतिको निर्मल किया। मैं आपको अपना परम हितैषी मानता हूं; और इस बातकी भावना रहती है कि दाऊजीकी उत्तम वृत्तिसे समाधि-पूर्वक आयुकी पूर्णता हो। आप सावधान हैं ही। आप कुटुम्बके प्रति मोह न रखना। कौन किसका है? आजतक यही तो देखा। इसमें क्या अपूर्वता है? अपूर्वता तो तब होती जब कभी यह मीठा न होता। आत्मज्ञानकी महिमा इसीसे है कि उसके होते यह ठाठ विलय हो जाता है, केवल शुद्ध स्वरूपका लाभ होता है। परन्तु मोहकी महिमा उससे कम नहीं,— जिसके प्रभावसे यह ३४३ घनाकार लोक अनन्त जीवोंसे भर रहा है, और उनकी ८४ लाख योनियाँ बन रही है। जिसे इन योनियोंमें जाना अभीष्ट न हो, केवल एक रूप रहना हो, वही आत्मज्ञान प्राप्त करे। विशेष फिर। आपने लिखा कोई आवश्यकता हो तो लिखना। ऐसा उपाय करो, जो आपको तथा हमे यह पिशाचिनी (आवश्यकता) न सतावे। सबसे यथायोग्य।

× × ×

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी (जगाधरी) दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा सो ठीक है। चारित्र मोहका गलना इस पर्यायसे होना कठिन है। आप जानते है कि परिग्रहका जो त्याग अभ्यन्तरसे होता है वही तो कल्याणका मार्ग होता है; और जो त्याग ऊपरी दृष्टिसे होता है वही क्लेशकर है।

वर्तमानमें वह सुखजनक नहीं और न आगामी सुखका जनक है। कौन आत्मा दुःखको चाहता है? परन्तु इतने ही भावसे दुःखकी निवृत्ति नहीं होती। तत्वज्ञान पूर्वक राग-द्वेषकी निवृत्ति ही इसका (दुःख-निवृत्तिका) मूल कारण है। मेरी सम्मति तो यह है कि आप जो परस्पर दो मनुष्यको मिलानेकी चेष्टा करते है और उसमें विफल प्रयत्न रहते हैं और फिर विफल होने पर भी गुरुताका अनुभव करते हैं, यह सब छोडिये, और एकदम सर्वसे कह दीजिये—जिसमें आपको सुविधा हो करो। हम कोई करनेवाले नहीं। जितना आप उन्हें मनाओगे उतना ही वे आसमान पर चढ़ेंगे। "कौन किसका"—यही सिद्धान्त रखिये। मेरा यह तात्पर्य नही कि ग्रहवास छोड दीजिये,—परन्तु भीतरसे अवश्य छोड दीजिये। ससारमें मानव पर्याय की दुर्लभतापर ध्यान दीजिये। अपने परिणामोंपर दृष्टि रखनेसे ही सबका भला होगा। आप स्वप्नमात्र भी व्यग्र न हों। पर-पदार्थ व्यग्रताका कारण नही। हमारी मोह-दृष्टि व्यग्रता का कारण है। उसे हटाओ। उसके हटनेसे जगाधरी ही शिखरजी है। आत्मामें मोक्ष है, स्थानमें मोक्ष नही।

× × ×

श्रीमान् लालाजी से योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा बहुत दिनसे पत्र नही दिया, सो भाई पत्र क्या दें। सर्व सुख—सामग्री तो तुम्हारे पास है। आप उसका उपयोग न करें, तब हमारे पत्रसे क्या लाभ? मैं तो आपको जब पुरुषार्थी और ज्ञानी समझूंगा जब मनकी शल्यको

कर्म-कृत जानकर प्राणी मात्रको अपना भाई समझोगे। जबतक परको अपना अनिष्टकारी समझोगे तबतक हमारा पत्र क्या किसीका उपदेश हितकर न होगा। शल्य निकलनेसे अनायास सुखी हो जाओगे।

× × ×

श्रीयुत धन्यकुमारजी, दर्शनविशुद्धि

आप जानते हैं कि जब तक यह जीव वाह्य पदार्थों के द्वारा अपनी महत्ता समझ रहा है,—उससे जो न हो, थोड़ा है। धर्मकी रक्षा करनेवाले रत्नत्रय-धारी पवित्र-आत्मा होते हैं। उन्हींके वाक्य आगम-रूप होकर इतर (अन्य) पुरुषोंको धर्म-लाभ करानेमें निमित्त होते हैं। धन आदि जो वाह्य जड़-पदार्थ हैं, उन्हें अपना मानना अपनेको जड़ बनानेकी चेष्टा है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ज्ञानी जीवका अनादर हो जावे, तो इसमें आश्चर्य क्या है? परन्तु ज्ञानी वही है जो इन उपद्रवोंसे चलायमान (विचलित) न हो। स्यालिनीने श्रीसुकुमाल स्वामी का उदर विदारण करके अपने क्रोधकी पराकाष्ठाका परिचय दिया, किन्तु सुकुमाल स्वामी उस भयंकर उपसर्गसे विचलित न होकर उपशम श्रेणी द्वारा सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके पात्र हुए। अतः मैं उसीको सम्यग्ज्ञानी मानता हूं जिसकी श्रद्धामे मान-अपमानसे कोई हर्ष-विषाद नहीं होता।

आत्म-कल्याणके लिए अधिक समयकी आवश्यकता नहीं, किन्तु निर्मल अभिप्रायकी महती आवश्यकता है। गृहस्थ-अवस्थामें नाना प्रकारके उपद्रवोंका सद्भाव होनेपर भी निर्मल अवस्थाका लाभ अशक्य या असम्भव नहीं। वासना ही संसार और मोक्षकी जननी है। मेरा स्वास्थ्य तीन माहके मलेरिया ज्वरसे दुर्बल हो गया है, इससे मैं बाह्य विशेष कार्य करनेमें असमर्थ हूं। समय पाकर आपके पत्रका उत्तर दूंगा।

( ईसरी, श्रावण वदि १२, १९९७ )

* *

श्रीमान् बाबाजी महाराज, योग्य इच्छाकार।

आपका पत्र आया। मैंने 'स्वामिकार्तिकेय ग्रन्थ' देखा। उसमे सामान्य वर्णन है, विशेषरूपसे वर्णन नहीं है। उसमें तो कुछ भी नहीं निकलता। हाँ, गुरु परम्परासे जो कुछ हो। फिर भी उत्सर्गमे और अपवादमे मैत्री-भाव रहना चाहिये। यदि अपवादमे लीन हो जावे, तब असयम ही के तुल्य हो जाता है। करना और बात है, और कहना और बात है। अनादि कालसे इस अज्ञानी जीवने केवल इन बाह्य वस्तुओंके द्वारा ही कल्याणके मार्गको दूषित बना रखा है। वह चरणानुयोगके मार्मिक भावका वेत्ता न होकर केवल बाह्य त्यागकी मुख्यताकर बाह्यका भी नाश करता है। बाह्य क्रिया वही सराहनीय है जो आभ्यन्तरकी विशुद्धतामें अनुकूल पड़े। केवल आचरणसे

कुछ नही होता, जबतक कि उसके गर्भमें सुवासना न हो। सेमरका फूल देखनेमें अति सुन्दर होता है, परन्तु सुगन्ध-शून्य होनेसे किसीके उपयोगमे नहीं आता।

× × ×

श्रीमान् सिघईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

क्या विपुल परिग्रह अर्जन करनेसे परलोककी भलाई हो सकती है? यह कुटुम्ब ही एक दिन इसका बँटवारा करनेमें जैसा कौतूहल करेगा, सो आप तो देखने नहीं आवेगे! ससार, जो उस समय सागरमें होगा, देखेगा। परन्तु आपका क्या अपराध? आपको उस जन्मका उनका ऋण देना है, सो अनेक कष्ट करके भी दोगे। परन्तु फिर भी यह भावना नही होगी कि आत्म-कल्याण करें। मेरी तो यह सम्मति है कि आपके बाद जो आप सम्पत्ति छोडे, उसमे चार-आना श्री धर्मपत्नीको, चार-आना दोनों लडकीको, चार-आना आपके प्रसादसे रक्षित पाठशालाको और चार-आना अनाथोकी परवरिशमें दो। यद्यपि यह आपको वर्तमानमें कटु लगेगा, परन्तु परिपाक इसका अच्छा है।

\+ + +

श्रीयुत महाशय प० कस्तूरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

आपका पत्र पढ़कर? आपके उदासीन भावके विभवका परिचय होता है। इससे अधिक शान्ति इस अवस्थामें हो नही सकती। विशेष क्या लिखें? क्या सम्यग्दृष्टि का जीव बाह्य सामग्री सग्रह नहीं करता? सामग्रीका सग्रह अव्रत अवस्थामें

होना अनिवार्य है। अविरत अवस्थाकी कथाको छोडिये, देखिये, आरम्भ-त्यागी भी तो परिग्रह रखता है, उसका कुछ उपयोग रखता है, या यों ही फालतू बन्ध करता है। इसकी कथा भी छोडिये, नवम प्रतिमाके सम्मुख जब होता है उस समय और सपुत्र वा उसके अभावमें दत्तक पुत्रको क्या उपदेश देता है ? यह क्या है ? अथवा श्रावकोंकी कथाको छोडिये। दिगम्बर पदको अवलम्बनकर षष्ठ गुणस्थानमे क्या होता हैं ? इससे, जो उदयमे सामग्री प्राप्त हैं उसे सन्तोष पूर्वक भोगिये और सत्य-मार्गके पथिक बने रहिये। आजकल कोई भी स्थिति (स्थितिकरण) करनेवाला नहीं। आप ही आप सानन्द जीवन बिताइये , और जहाँतक बने, जैसा आपका क्रम था वही रखिये। मैं तो उससे उत्तम मार्ग आपके अर्थ अन्य नही देखता। आप कैसे ही ज्ञानी या त्यागी क्यों न हों, परन्तु उससे समाजको परम लाभ है और गौरव है किन्तु आपका उतना लाभ होना कठिन है।

× × ×

श्रीयुत मन्त्रीजी, दर्शनविशुद्धि.

आत्मा क्या पदार्थ है ? जिसके रक्षा करनेके भाव होते हैं और जिसमे ये भाव उत्पन्न होते हैं वही तो आत्मा है। मेरी तो यह धारणा है कि न तो भक्तिसे आत्म-तत्त्वकी शुद्ध उपलब्धि होती है, और न अध्यात्मसे ही शुद्ध आत्म-तत्वकी उपलब्धि होती है, और न उसके अर्थ केवल इन अणुव्रत महाव्रतोंके पालनेकी आवश्यकता है, परन्तु जबतक मोहके

भावोंकी सत्ता है तबतक यह सर्व विडम्बना है। तब फिर उस तत्त्वकी प्राप्तिका कोई उपाय है या नही ? इसके उत्तरमें धारणा तो नहीं की ओर जाती है और जिसके दृढ परिणाम होकर एकबार इन वाह्य उपायोंसे पृथक् होकर—मैं ज्ञातादृष्टा हूं 'और शेष कल्पना परजन्य होनेसे औपाधिक है' ऐसा दृढ निश्चय हो, वही इस परम तत्त्वका अधिकारी हो जाता है।

× × ×

श्रीयुत मूलशङ्करजी, दर्शनविशुद्धि

आप जानते हैं—ससारमे सर्व प्राणियोंकी सुखमें इच्छा रहती है। रहो, इससे हमें क्या लाभ ? हमे देखना है कि हमारी इच्छा किस ओर जाती है ? जिस ओर जावे, उसको लेकर विचार करनेकी आवश्यकता है। उसीके निर्णयसे हमारे सम्पूर्ण निर्णय अनायास हो जावेगे। जब हमारी आत्मामे किसी विषयकी इच्छा हो जाती है, उस समय हम अत्यन्त क्षुब्ध और दुःखी हो जाते हैं, यह क्यों ? इसपर विचार करो कि ऐसा क्यों होता है ? ऐसा यों होता है कि इच्छा एक वैकारिक या विकृत भाव है और वह उसे दुःख देते हैं।

× × ×

श्रीयुत महानुभाव, दर्शनविशुद्धि

यदि हमको बुलानेका आपका भाव है, तब जहाँतक बने, कुछ ऐसे प्रयत्न करो कि वहाँ की पाठशालामें आप सहायक हों। कठिन समस्या हैं। जबतक आत्मामे त्याग भाव न हो, तबतक परोपकार होना कठिन है। परोपकारके लिये उत्सर्ग होना

परमावश्यक है। उत्सर्ग वही कर सकेगा जो उदार होगा। उदार वही होगा जो संसारसे भयभीत रहेगा।

× × ×

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

संसारकी प्रवृत्ति रागद्वेषमय है। यहाँपर कल्याणका पथ अति कठिन है। 'परन्तु कल्याणका मार्ग कठिन है'—यह कहना हमारी कायरताका परिचय है। अनादिकालसे हम अपने स्वरूपको भूल रहे हैं, और परको ही अपना समझ रहे हैं। निरन्तर उसीको पोषण करनेके लिए अपनी यावतीय (समस्त) शक्तिको उसी ओर लगा देते हैं। संसारमें जितने भी विकाश पुद्गल-द्रव्यके हुए हैं, उनमें मूल कारण जीव ही है।

× × ×

श्रीयुत महाशय, धर्मप्रेम

मेरा पता कोई ऐसा नहीं जो गूढ हो, परन्तु आपको मिला नहीं सो अच्छा ही हुआ। दस रुपया हमारे इस उत्तम कार्यमे गये; और साहित्य सेवाका आपको जितना फल होगा उसके भोक्ता अल्प ही होंगे। परन्तु इन वाह्य फालतू आदमियोंके जालमे न फँसना। प्राणी-मात्रको कल्याण करनेका अधिकार है। परन्तु जिस जातिने जो व्यवस्था बना रखी है उसे मिटानेका प्रयास करना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। यदि कोई १० आदमी किसी प्रकारका नियम बना ले, तो हमें उसके भङ्ग करनेका क्या अधिकार है?

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

आपके स्वभावको देखकर आपकी प्रवृत्तिका पता चलता है। अब आप व्यर्थके यातायातको दूर करके शान्त चित्तसे केवल स्वाध्याय करिये। जो आपकी बुद्धिमे आवे, उसीका अभ्यास करिये। शास्त्र-ज्ञानका मूल तो यही अभिप्राय है कि अपनेको परसे भिन्न समझा जावे तथा वह जानना स्थिर रह जावे। इसके लिए मनुष्य जब नाना यत्नोंके संचयमे उलझ जाता है, तब वह लक्ष्यसे दूर हो जाता है। यत्न तो एक ही है—येनकेन उपायसे रागद्वेषकी शृंखला टूट जावे, ज्ञाता-द्रष्टा ही आत्मा रहे। वह उपाय एक यही है—निरन्तर मूर्च्छाके वाह्य कारणोंसे अपनेको रक्षित ( बचाये ) रखो। उसके अर्थ अपनी मनोभावना पवित्र बनाओ। कलकत्ताके सदृश नगर चतुथकालमें भी थे, तब क्या कोई जीव उस कालमे ऐसे क्षेत्रमें श्रेणी नही माँडता था? यदि परिणामाकी निर्मलताका उदय हुआ, तब श्रेणी माँडनेमे नगर कोई बाधा उपस्थित नहीं कर सकता। अत शान्त चित्तमें वाह्य आडम्बरोंकी ओर दृष्टि न देकर स्वात्म-दृष्टिपर अवलम्बित होओ। ज्ञानकी न्यूनता आत्म कल्याणका घातक नही। आत्म-कल्याणकी बाधक मुग्धता है, उसीको हटानेकी आवश्यकता है। वह केवल निमित्त-कारणोंसे नही जाती, किन्तु स्वात्म-कैवल्यका मनन या अनुभूति ही उसके जानेका उपाय है।

× × ×

श्रीयुत महाशय नेमिसागरजी ब्रह्मचारी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द पञ्च-कल्याणक देखकर आनेका प्रयत्न करना।

हमारा प्रबलतम पुण्योदय नहीं, अन्यथा ऐसी प्रतिज्ञा न होती। हमारा तो दृढ निश्चय है कि प्रभु केज्ञानमें देखा गया होगा, वही होगा। किसी की सुश्रूसा करनेमे कोई लाभ नहीं। जिसको आत्म-कल्याण करना हो वह आत्म-सम्बन्धी रागादिक छोड़े। लोग अन्यका समालोचना करनेमें समय लगाते हैं। कल्याण का इच्छुक आत्म-सम्बन्धी दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है, और वही ससार दुःखोंसे दूर हो जाता है। आप लोगोंकी जो कुछ मशा हो, आप जानें; परन्तु ऐसा उत्तम क्षेत्र धर्म साधनके अर्थ अन्यत्र नही। सामने श्री पार्श्व प्रभुकी निर्वाण-भूमिके दर्शन, प्रान्तमें तपोभूमि, अथच यहाँके मनुष्य सरल और दम्भसे रहित हैं। यदि इनमे मद्य-पीनेका दोष न होता, तब सहजमें ये धम धारणके पात्र हो जाते। परन्तु पञ्चमकालमे ऐसा होना असम्भव है। हम तो अपनी बात कहते हैं—इतने दिन बाह्य क्रिया करते हो गये, मृत्युके सन्निहित आ पहुचे, परन्तु हृदयकी कुटिलता नही गई। यह मेरा लिखना अपने वास्ते है, क्योंकि मुझे अपने हृदयका भाव ज्ञात है। आप महाशयोंकी वृत्ति आप जानें। धर्मका परमार्थरूप बाह्य व्यापारसे परे है। बचनकी सुन्दरतासे अन्तरङ्गकी वृत्ति भी सुन्दर हो—यह नियम नही। वहाँपर अच्छे-अच्छे धीमान् पण्डित और श्रीमान् सेठ आवेंगे, आप उनसे यह कहना। केवल व्याख्यानकी रोचकतासे समाजको खुश करके धन्यवाद लेकर न चले जाना, किन्तु उस क्षेत्र और विद्यालयका उद्धार करके आना ही आपकी विद्वत्ता

की सफलता है। उनके हृदयमे निरन्तर स्मरण रहे ऐसा जाना ही अच्छा है। धनिकवर्गसे भी यही मेरा कहना है—केवल उत्सवकी शोभा सम्पादन करके न चले आना, किन्तु क्षेत्र और पाठशालाका उद्धार करके जाना। आपके बुलानेका प्रायः यही उद्देश्य प्रमुख कार्य-कर्त्ताओंका था। या न हो तो वे जानें। परन्तु आप श्रीमानोंका कर्तव्य है कि योग्य क्षेत्रमें दान करके स्वकीय विवेकका समाजको अनुकरण करनेका पाठ पढ़ा करके शुभ प्रस्थान करके जाना। 'ऊषरे सरसि शाल्मलि-वने दावपावकचितेऽपि चन्दने। तुल्यमर्प्यसि वारि वारिद कीर्तिरस्तु गुण-विज्ञता गता।" अन्यथा "विनर वारिद वारि तृषातुरे चिरपिपासितचातकपोतके। प्रचलति मरुतिक्षण-मन्यथा क च भवान् क च पय क च चातक.।" विशेष क्या लिखूं? वहाँपर जो उत्तम वक्ता आवे, उनसे यह मेरा सन्देश अवश्य उचित समयपर समाजको सुनानेके लिए कह देना। मुझे लिखनेका अभ्यास कम है। अत जो मेरा भाव है उसे अपने शब्दोंमें लाकर समाजके हृदयमे अंकित करनेकी अवश्य चेष्टा करें।

\+ + +

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज, प्रणाम

आपके समागमसे और नही तो एक बात अवश्य ध्यानमें अकाट्यरूपसे आ गई है कि यह परिग्रहका सचय ही पापकी जड है। इसे उन्मूलन करना चाहिये। वाह्यरूपसे तो इसको उन्मूलन कर द्रव्यलिंगवत् बहुत बार स्वाँग किया, सो तो दिव्य

ज्ञानका ही विषय है। परन्तु जिसे मूर्छा कहते हैं, वह कैसे जाती है ? यह ग्रन्थी अभी तक नहीं खुली। खुलनेकी कुञ्जी ध्यानमें आती तो है, परन्तु वह इतनी चपल है कि एक सेकेण्ड तो क्या उसके सहस्रांश भी हाथमें नहीं रहती। क्या बेढब गोरखधन्धा है ! एक कड़ी निवारण करता हू तो अन्य आकर फँस जाती है। अतः इस गोरखधन्धाके सुलझानेके अर्थ केवल महती बुद्धिमत्ता की ही आवश्यक्ता नहीं, साथ-साथ पुरुषार्थकी भी उतनी ही आवश्यक्ता है। शास्त्रोंमें अनेक ऋषि-प्रणीत उपायोंकी योजना है; परन्तु उन सर्व उपायोंमें वचन-शैलीकी विभिन्नता है, न कि अर्थकी विभिन्नता। अत: किसी भी ऋषिके ग्रन्थका मनन कर निर्दिष्ट पथका अनुसरण कर अपनी मनोवृत्तिकी स्थिरता कर स्वार्थ या आत्माकी सिद्धि करना बुद्धिमान मनुष्यों का मुख्य ध्येय होना चाहिये। व्यर्थके झंझटोंमें पड़कर बुद्धिका दुरुपयोग कर लक्ष्यसे च्युत होना अकार्यकर है। जितने अधिक वाह्य कारण सचय किये जायेंगे, उतना ही अधिक जालमें फँसते रहेंगे। अतः मैंने अब एक ही उपाय अवलम्बन करनेका निश्चय किया है। आजकल शारीरिक व्यवस्था कुछ अनुकूल नही। दशमी प्रतिमाका जो उत्तर श्रीमानोंका 'जैन सन्देश'में है, अपवादरूपसे दूसरी बार जल ले सकता है;—इसमें ऐसा जानना कि अपवाद तो परमार्थसे कभी-कभी होता है, यदि उसमें रत हो जावे तो यह मूल घात ही है।

+ + +

श्रीयुत महाशय बाबूलालजी, दर्शनविशुद्धि

शान्तिका कारण मेरा पत्र नहीं; जो आपकी मूर्छा गई है,

वही है। और जब अन्तरगमें मूर्छा गई तब उपयोग स्थिर होना ही चाहिये। अब उससे श्रेयरूप ही दृष्टि रखना श्रेयस्करी है। मेरी समझमे आपकी आयु भी ५० से ऊपर ही होगी। सर्वोपरि काम दयाका है। उसको भी आपने शक्ति-भर किया; फिर भी शान्तिकी पिपासा रह ही गई। धन भी यथायोग्य उपार्जन किया, दानकी आप जानें, परन्तु ऐसे बहुत उदाहरण दानियोंके हैं, जिनके शान्तिकी गन्ध भी नही। इन बातोंकी कथा छोडो। जिन महानुभावोंने बडे-बडे तीर्थ अटन (यात्रा) किये, पञ्च-कल्याणक प्रतिष्ठा कराईं, मन्दिर-निर्माण किये, अष्टान्हिक, दशलक्षण, षोडशकारण व्रत किये, बडी-बडी आयोजना करके उन व्रतोंके उद्यापन किये, परन्तु शान्तिकी गन्ध भी नही आई। अस्तु। इनकी कथा छोडो। जिन्होंने महान्-महान् आर्ष-ग्रन्थ अध्ययन किये तथा पर-वादियोंके समक्ष सिंहनादकर मत्त मातगका मर्दन किया, अपने पाण्डित्यके प्रतापसे पण्डितोंकी श्रेणीमें जिनका प्रथम नामोच्चारण करनेसे लोग अपना गौरव समझते थे, परन्तु उनकी आत्मामें शान्ति-समुद्रकी शीतलताने स्पर्श भी नही किया। अस्तु। इनकी भी कथा छोडो। जो गृह-वास त्यागकर दिगम्बरी दिशाके पात्र हुए तथा अध्ययन अध्यापन आचरणादि समस्त क्रिया कर तपस्वियोंमे मुख्य कहलाये, जिनकी काय-सौम्यता और वचन-पटुतासे अनेक महानुभाव ससारसे मुक्त हो गये, परन्तु उनके ऊपर मुक्तिलक्ष्मीका कटाक्षपात न हुआ। अत सिद्ध होता है कि शान्तिका मार्ग न वचनमें है, न कायमे है, और न मनो-व्यापारमें

है। वास्तवमें वह अपूर्व रस केवल आत्म-द्रव्यकी सत्य भावनाके उत्कर्ष ही से मिलता है। जब आत्माका सत्य-प्रत्यय ( विश्वास ) होता है, उस कालमें अनायास ही ये जो पर-पदार्थ हैं, जिन्हे हम अपने ही भावोंसे इष्टानिष्ट कल्पना कर रहे हैं, आपसे आप ज्ञेय-रूप भासने लगते हैं। उस कालमें न हमारे शत्रुकी कल्पना होती है, न मित्रकी, न गुरुकी, न शिष्यकी, न यजनकी, न याजनकी, न घटतकी और न बढ़तकी। उसका वर्णन करना मेरी समझमें तो आता नही, क्योंकि वह शान्त दशा है। वर्णनका करना अन्तरगमें योग और उपयोगके द्वारा होता है, जो कि अनात्मीय है। वास्तवमें छद्मस्थकी बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति है, उसमे योग और उपयोग कारण हैं। "समयसार" मे श्री कुन्दकुन्द महाराजने लिखा है—

"जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे,
जो गुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता।"

( समयसार गाथा १०० )

जीव न घटको करता है, न पटको करता है, और न शेष द्रव्योंको करता है। उन सर्व कार्योंका करता उपयोग है, आत्मा अपने योग और उपयोगका कर्त्ता है। जो वे घटादि अथवा क्रोधादि कर्म हैं, यदि आत्मा इनको व्याप्य व्यापक भावसे करे, तो तन्मय हो जावे। और तन्मय होता नहीं, इससे तन्मय होकर नही करता।

श्रीयुत बाबू खेमचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

एक बार आप एक दिनको आ जाओ, आपके प्रश्नोंका खुलासा उत्तर दूंगा। लिखनेमें वह बात नहीं आती। द्रव्य-अप्रतिक्रमण और भाव-अप्रतिक्रमण, द्रव्य-अप्रत्याख्यान और भाव-अप्रत्याख्यानका स्वरूप इस प्रकार है सो जानना—अतीत कालमें जो अपराध किये थे उनको हेय समझना ही मेरी समझमें प्रतिक्रमण है अर्थात् उनसे अपनी आत्माकी निवृत्ति करना।

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो नियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं॥

(समयसार गाथा ३८३)

अर्थात् अनादिकालमें जो शुभ और अशुभ अनेक प्रकारके कर्म आत्मासे हुए, उनसे आत्माको निवारण करना ही प्रतिक्रमण है।

× × ×

श्रीयुत महाशय सिंघई कुन्दनलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका और सिंघई कुञ्जीलालजीका पत्र आया। बाँचकर परम तोष हुआ। न जाने क्यों, आपके प्रति निरन्तर यही भावना रहती है कि आप इस संसार-जालसे छूटें। यद्यपि यह न मेरे हाथकी बात है और न आपकी, काल-लब्धिके आधीन बात है। परन्तु मोहमें जो कल्पना हो, थोडी है। अब आप भी निःशल्य होकर धर्म साधन करिये। यही संसारसे तरणका उपाय है। कोई भी पर-वस्तु इस जगतमें हमारी नही।

हमने मोहसे अपनी मान रखी है। और इस अनादिसे लग्न मोहकी इतनी प्रबलतम शक्ति है कि हम इससे छुटकारा पानेकी इच्छा करते हुए भी, उसके दुष्कर जालसे निकलनेको कुछ तो असमर्थ हैं और कुछ ऐसा ही बाह्य परिकर साथमें है जो उसके ही गुणगानकर हमको अकिञ्चन् घोषणा कर नपुंसक तुल्य बनाकर निरुत्साह बनानेमें ही अपनी प्रवीणता दिखाकर उपदेष्टा बना रहा है।

× × ×

श्रीयुत महाशय सिंघई कुन्दनलालजी और कुञ्जीलालजी,

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका पत्र आया, पढ़कर चित्तमें इतनी शान्ति हुई जो कि वचनातीत है। हितू उसीको कहते हैं, जो अपने आत्मीय जनोंको हितकी ओर ले जावे। आपने जो सम्मति दी, वह परम उत्तम है। द्रोणगिरिकी अपेक्षा यही क्षेत्र अच्छा है, क्योंकि यहाँपर निरन्तर परिणामोंकी उज्ज्वलताका कारण है। आप जानते है—जहाँपर मनुष्य चिरकाल रहता है, वहाँपर उसके स्नेही बहुत हो जाते हैं और वे ही उसके समाधिमरणके बाधकरूप हो जाते हैं। हमको केवल आपकी शल्य थी, आपने वह निवारण कर दी, अब अन्य शल्य कोई नहीं। सागर पाठशालाकी शल्य थी, सो उसकी रक्षा करना प्रान्तका काम है। सागरकी जनताके लिए, यदि वह चाहे तो, पाठशालाका चलना कठिन नहीं। वचनोंकी सुन्दरतासे रक्षा नहीं।

श्रीयुत लाला मंगलसैनजी, दर्शनविशुद्धि

परिग्रह उतना रखना श्रेयस्कर होगा जिससे आपकी इच्छा पूर्ति हो जावे और सक्लेशभाव न हो और न वह इतना अधिक हो जिससे गृद्धता पैदा हो जावे। ससारमें उन जीवोंकी प्रशसा है जो इस जालसे पृथक् होनेकी चेष्टा करने लग जाते हैं। आपने अच्छा विचार किया है। लाला शीतलप्रसादजीने २००० सवत्‌मे गृहसे विरक्त होनेका विचार किया है। पृथक् होनेके पहिले अच्छी तरहसे चित्त-वृत्तियोंका निरोध करनेका प्रयत्न करें। केवल बाह्य-पदार्थोंके त्यागसे ही शान्तिका लाभ नही, जबतक कि मूर्च्छाकी सत्ता न हटेगी। मूर्छा घटाना ही पुरुषार्थ है। इसके लिए महान् उत्तम विचारोंकी आवश्यक्ता है।

× × ×

श्रीयुत महाशय प० दयाचन्दजी, दर्शनविशुद्धि।

लोगोंकी वृत्ति अब केवल ऊपरी स्नेहकी रह गई है। भावी दुर्निवार है। अब हमारी भी ६६ वर्षकी आयु हो चुकी है। वृद्धावस्थाके चिह्न सब व्यक्त हो रहे हैं। इतना जिनधर्मके प्रसादसे लाभ हुआ है कि कोई प्रकारकी इन्द्रियोंमे शिथिलता नही। देखना, सुनना, दन्त आदि पूर्ववत् हैं, फिर भी जरावस्था ही है। आपने बहुत ही प्रयास किया, परन्तु फलाश कुछ नही। अब तो यही मनमें आता है कि क्षेत्र न्यास कर यही रह जाना समुचित है। अब तो शान्तिसे जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है। परोपकारके अर्थ पुण्यकी आवश्यकता है। अब न तो प्राणियोंमे पुण्य है और न चारित्रबल है।

श्रीयुत महाशय बाबाजी महाराज, बारम्बार इच्छाकार

मैं आपके स्नेहका पात्र हूं। आपका सन्देश मेरा उपकारी व्यक्ति नहीं—आप जो लिखते हैं—अनुभवगम्य वस्तु है। है भी वैसा ही; किन्तु अभ्यासके बिना उसके स्वरूपका लाभ होना अगम्य है। वचनसे प्रतिपादन करना तथा अक्षरोंसे लिखना सहज है; किन्तु उसका अन्तस्तत्त्व आ जाना अन्य वस्तु है। आपने जो लिखा, वह अक्षरशः सत्य है। आत्माका स्वरूप ज्ञाता ही है, किन्तु औपाधिक भावोंसे वह मलिन हो रहा है।

× × ×

श्रीयुत सिंघईजी, दर्शनविशुद्धि

आपसे मेरा कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। मेरी भी निरन्तर यही भावना रहती है कि आपका कल्याण हो। आप निरन्तर यह प्रयत्न करते हैं कि मैं वहाँ आ जाऊँ। आना कठिन नहीं, परन्तु आपको तो एक क्षणका अवकाश नहीं है। इस परिग्रह-पिशाचने इस तरहका आपके ऊपर जाल डाला है कि आपका उससे निकलना असम्भव हो गया है। संसारमें यह मूर्छा ही एक ऐसी महती शक्ति है कि इसके जालमें सम्पूर्ण संसार फँसा हुआ है। वे धन्य हैं जिन्होंने इस जालको तोड़कर स्वतन्त्रता प्राप्त की। इस जालकी यह प्रकृति है कि जो इसे तोड़कर निकल जाता है वह तो फिर इसके बन्धनमें नहीं आता; परन्तु अन्यके अर्थ यह बन्धनरूप ही रहता है। अत. अब पुरुषार्थ कर इसे तोड़ो और स्वतन्त्र बनो। और

हमको बुलानेके भाव हैं तो हम तब आ सकते ह जब आप जिस प्रकार हम कहें, वैसा करो। यदि यह नहीं हो सकता, तब बुलाना निरर्थक है। आपका एक लाख रुपया ऐसा गया जिसका कोई स्वार्थ न हुआ। अब हमारे कहनेसे नहीं, जो आपकी भावना है—गोलापूर्व जातिकी बडी हीन दशा है—वैसा करो—उसकी रक्षार्थ २५०००) रुपये निकाल दो जिससे उसकी ब्याजसे द्रोणगिरि क्षेत्रपर एक जो विद्यालय है अमर हो जावे। २५०००) तो आप दो और इतना ही मलैयासे दिलानेका प्रयत्न करो। वे न देवे तब आप तो देनेका हृदय करो। अन्तमें जो होना है वही होगा। परिग्रहके अर्थ ही सबका आपसे प्रेम है; और तो सब बाते है। हम आपके अन्तरगसे हितू हैं। आशा है हमारी बातपर विचार करोगे। यह सर्व ससार स्वप्नकी माया है। चार दिनकी चादनी, फिर अधेरी रात। गई बहुत, थोडी रही। थोडी हू तो जात, अब मत चूको, फल मिलने की रात। आप भी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि आयुका अन्त आवेगा, और यह सर्व आडम्बर, जिससे हम लोगोंमें सत्कारके पात्र होते है यों ही पडा रहेगा। और तो कथा दूर रहो, उसके अर्थ बड़े-बड़े अनर्थोंकी परम्परा होगी। अच्छे-अच्छे आदमियोंके परिणाम विभावरूप हो जावेंगे। नाना अनर्थ परिणमनका मूल कारण यह परिग्रह ही है। धन्य है उन महान् पुरुषोंको जो इसमे लिप्त न होकर दैगम्बरी दिशाके पात्र हुए।

श्रीयुत पं० मूलचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

वैश तो सर्वत्र सम्पन्न और दरिद्र हुआ करते हैं वास्तवमें पराधीनताका कष्ट ही प्राणियोंकी वेदनाका कारण है। जहां पराधीनता है वहा सुखकी मात्रा होना कठिन है। आजतक धर्मका लोप क्यों हो रहा है? विभिन्न धर्मके अनुयायी राजा हैं, उनके यहाँ वास्तविक हितकारी धर्म नष्ट हो चुका है, केवल ऊपरी ठाठ है, विषयमें मग्न हैं, और जहाँ विषयोंकी प्रचुरता है वहाँ धर्मको अवकाश नहीं मिल सकता। जहाँ विषयकी प्रचुरता है वहाँ न्याय और अन्यायका यथार्थ स्वरूप नहीं। वहाँ तो जिस कार्यमें स्वकीय विषय विषयणी की रक्षा हो वही उनका कर्तव्य रहता है। ससारमें जहाँ कहीं भी अन्यायकी वृद्धि और न्यायका ह्रास होता है, वहाँपर धर्मका वास्तव स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। यहा तक कि धर्मके अर्थ जो स्थानादि हैं, उन्हे भी अन्यायी राजा ध्वस कर देता है। "न रहेगा बास और न बजेगी बासुरी।" यदि धर्म-स्थानोंकी रक्षा होती रहती तब धर्मात्माओंका भी अस्तित्व रहता। जहांपर अगणित तपस्वी और परोपकारी साधुओसे यह वसुन्धरा भूषित रहती थी, वहा आज गजेड़ी, भगेडी, चरसबाज, चडूबाज, मद्यपायियोंकी भरमार है। कहा तक लिखें, आज इस पवित्र जैनधर्ममे भी जो साधु हैं, वह हैं तो दिगम्बर, परन्तु साथमें तम्बू और घडो आदि तथा ४-४ पेटी शास्त्र रखते हैं। कहा तक कहें, चश्मा, लालटेन, घड़ी आदि तो अब पीछी-कमडलु पुस्तककी तरह धर्मोपकरणमें गिने जाने लगे।

श्रीयुत महाशयजी, इच्छाकार ।

अब पर्यायकी क्षीणता होगी और इसमें अनिवार्य निर्बलता होगी, किन्तु इसमें आत्मगुणको क्या बाधा है ? आप तो नहीं, परन्तु अन्य भोले प्राणी कहेंगे कि जब इन्द्रियाँ शिथिल होगी तब इन्द्रियजन्य ज्ञान भी शिथिल होगा। हाँ। परन्तु उससे आत्माकी क्षति नहीं। जिससे आत्माकी क्षति है उसकी घातक यह इन्द्रिय दुर्बलता नहीं।

× × ×

श्रीयुत महाशय सिंघई कस्तूरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अज्ञान और कषायसे संसारमें जो अनर्थ न हो जावे, थोड़ा है। परन्तु ज्ञानी मनुष्यके चित्तमें यदि कुछ भी आश्चर्य हो, तो आश्चर्य है। हमारे ऊपर कोई कितना ही प्रहार करे, उसके प्रति हमारा अन्यथा भाव न होना चाहिये। यही हमारे सम्यग्ज्ञानका फल है। आप एक योग्य और ज्ञानी व्यक्ति है। विचारो तो सही, क्या पर-द्रव्य परके बुरा-भला करनेमें समर्थ हो सकते हैं ? आप स्वयं अपना बुरा-भला करनेमें असमर्थ हैं, तब अन्यकी क्या कथा ? संसारमें कौन अपना कल्याण नहीं चाहता ? फिर क्यों नहीं होता ? दुःखावस्थामें सब कोई दुःख निवारणार्थ प्रयास करते हैं। परन्तु इसीसे क्या उनकी चिन्तनासे कार्य सिद्ध हो जाता है ? अतः इन विकल्प जालों को छोड़कर आत्म-हितमें लग जाइये। स्थान आत्म-कल्याणका साधक नहीं। "दूरस्थाः भूधरा रम्याः"—हमको यहाँसे मढ़ियाजीका स्थान रम्य और वैराग्यप्रद प्रतीत हो रहा है और

वहांवालोंको ईसरी। यह केवल मृग-तृष्णावत् प्रयास है। कल्याणका कारण अपने आश्रित है ; न कि पर-अपेक्षा।

\+ + +

श्रीयुत महाशय सेठ लल्लूमलजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिका कारण हमारा पत्र नही, आपकी जो इच्छा हैं वह मेरे पत्रसे शात हो जाती है, सुखका जनक वही है। भ्रमसे पत्रसे शाति होती है। यह व्यवहार है। जब मेरा पत्र नही जाता है तब उस विषयकी आकुलता रहती है, और वही दु खकी भूमि है। आप जानते हैं—ओंकार तो एक तरहसे ज्ञानका उद्‌बोधक है। जब हमको किसी इष्ट पदार्थका वियोग हो जाता है, तब हमारी आत्मामें अनवस्त उस इष्ट पदार्थका वियोगरूपसे स्मरण रहता है, साथ ही उस पदार्थमें इष्टता माननेसे मोहोदय मिलता है, यदि स्मरण-कालमें मोहोदयकी कलुषता नही, तब कदापि दुःखी नहीं हो सकते। यही कारण है कि दुकानमें क्षति होनेसे जैसा दु ख मालिकको होता हैं, मुनीमको नही। पडोसीके इष्ट वियोग होनेसे, जिसके इष्टका वियोग हुआ है उसके जो दुःख होता है; वह इष्ट वियोग ज्ञान हमारे भी है। परन्तु हम अणुमात्र भी दुःखी नहीं होते। इसका कारण केवल यह है कि हमारे मोहोदयकृत भाव नही। इससे यही सिद्धान्त पर्यवज्ञानमें स्वीकार करना चाहिये कि पर-पदार्थका सयोग अथवा वियोग सुख और दु.खका जनक नहीं। सुख और दु खका कारण ममत्व-भाव है। ममत्व भावसे पर-सयोगमें सुख और वियोगमे दु.ख होता

है। और कहींपर, जिस पदार्थसे हमारा अनिष्ट होता है, उसमें हमारी ममत्व बुद्धि न होकर द्वेष-बुद्धि होती है। अत अनिष्ट पदार्थके संयोगमें सुख और वियोगमें दु.ख हुआ करता है। वास्तवमें ये दोनों प्रकारकी कल्पनायें अनात्म धर्म होनेसे अनुपादेय ही है। मोहका उदय तो प्राय बुरा है। ज्ञाना-वरणके क्षयोपशमसे तो पदार्थकी प्रतिपत्ति होती है। उससे आत्माकी कोई भी क्षति नहीं। किन्तु उसके साथमें यदि यह भाव हो जावे कि हम तो अमुक ज्ञानीकी अपेक्षा कुछ नहीं जानते, यह मानना सरासर मिथ्या है। क्या १००००) रु० वालेकी अपेक्षा ६०००) वालेके कुछ धन नहीं? जैसे यह मानना मिथ्या है वैसे ही जानना। तत्त्व-दृष्टिसे दोनोंकी जाति एक है। हाँ, कुछ न्यूनाधिक भाव है, सो वास्तव परमार्थ तत्त्वका कुछ भी बाधक नहीं। बाधक भाव वही होता है, जिसके होते ही आत्मामें बेचैनी पैदा हो जावे। जगतमें कोई भी दु.खी न हो, यदि बेचैनी न सतावे। परन्तु बड़ेको देखकर छोटा दु.खी होता है। इसीसे, भूधरदासजीने कितने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान्;
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान।

आप सम्यग्ज्ञानी होकर अधीर हो, यह हमारी बुद्धिमें नहीं आता। ससारमे शारीरिक निरोगता और सरोगता साता-असाताके निमित्तसे होती हैं। साता असाताके साथ रति-

अरतिकी मिश्रता ही सुख और दुःखमें कारण है। जिन जीवोंके सम्यग्दर्शन हो गया है, उन्हें साता-असाताका उदय चंचल नही करता। सम्यग्ज्ञानी जीव मिथ्या दृष्टिकी तरह अनन्त संसारके कारण-रूप कभी भी आकुलित नहीं होते।

× × ×

श्रीयुत प० दयाचन्दजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

यहासे वहा आनेसे यदि कोई विशेषता न हुई, तब क्या लाभ है? यहापर सूरजमलजीने एक बहुत बढ़िया बिल्डिङ्ग बनवा दी है, जिसमें पुष्कल भूमि है। और आश्रमकी रक्षाके लिये कलकत्तामें ६०००० ) की लागतका मकान लगा दिया, जिससे १३०) रु० मासिककी आय है। सर्व प्रकारसे धर्मका साधन होता है। कोई अनुपपत्ति नहीं। उत्तम क्षेत्रके निमित्तसे प्राय. भारत-भरके जैन आते हैं। अत, जबतक मुझे दृढ विश्वास न हो जावे कि वहा पाठशाला स्थिर हो जायेगी, तबतक यहासे निरुद्देश्य चल देना क्या उत्तम होगा? और यह भी एक बात है कि मेरा स्वाधीन रहना होगा। आजकल स्वाधीन रहना हतभाग्योंसे नही बन सकता। धर्मका यथार्थ आचरण पाले बिना कभी भी धर्मात्मा नहीं हो सकता। मैंने बहुतसे त्यागियोंका समागम किया, किन्तु बाईजीके सदृश धीर-प्रकृतिका मनुष्य नही देखा। मैं स्वय वास्तविक व्रतकी चर्य्या पालनेका पात्र नही। वञ्चना करना धर्म नही। धर्म तो वास्तव वस्तुकी पर्याय हैं। बहुत प्रयास करनेपर भी आत्मामें शान्तिका आस्वाद नहीं आता। अत यही प्रत्यय

( विश्वास ) होता है कि हम यथार्थ पथसे विचलित हैं या अभी काल-लब्धि अति दूर हैं या लोगोंको दिखलानेके अर्थ हमारे प्रयास हैं। काल-लब्धि तो सर्वज्ञके ज्ञानगम्य है। उसका हमें क्या प्रत्यय हो सकता है? हम अपनी प्रवृत्तिको स्वयं स्वच्छ बना सकते हैं। स्वच्छता वही है, जो अपनेमें परके प्रति निर्ममताका भाव हो।

× × ×

श्रीयुत महाशय बाबू रामस्वरूपजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बाईजीकी आज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है, अत. १००) रु० उसके अर्थ जमा करना हमारा परम कर्तव्य था। ब्याजके ७५) तथा ३५) पहिलेके ; कुल ११०) हुए ; उसमें १००) जमा करना। ६) आषाढ़में सिमरा भेजना ४) शेष रहे सो ३) का विशिष्ट भोजन छात्रोंको, १) जो आपके यहा काम करने वाले हों उन्हें कुछ मिठाई आदि लेकर देना। हमको यदि आवश्यकता होगी, मगा लेवेंगे। परन्तु अभी आवश्यकता नही। श्रेयास कुमार सानन्द होगा। यदि आलस्य छोड़ेगा, सानन्द आयु बितावेगा। आलस्य पापकी जड है। आलसी अपनी उन्नति कभी नहीं कर सकता।

× × ×

एक विद्यालयके नाम—

चार प्रस्ताव उचित ही हैं। पाँचवे प्रस्तावपर मन्त्रीजीका नोट उपयुक्त ही है, क्योंकि वर्तमान समयमे मिनिष्टरीका जमाना है। अत. सुपरिन्टेन्डैण्ट साहब एक यन्त्र बनकर सब

काम कर सकते हैं। मैंने जो प्रस्तावका समर्थन किया था, वह मनुष्यके कार्यको देखकर किया था। अतः मैं उसका मन्त्री साहबके अनुभव द्वारा किये नोटका सादर समर्थन करता हूं और पूर्व समर्थनको वापिस लेता हू। छठे प्रस्तावपर भी जो मेरा समर्थन है वह भी वर्तमानको गति-विधिको देखकर नहीं है; क्योंकि समयके अनुसार अब इस शुद्धताकी प्रथाको लोक उन्नतिका बाधक समझते है। अत· मैं तो अपने समर्थनको वापिस लेता हूं। जो इच्छा किसीकी हो, समर्थन करे। (७) यदि कमेटीकी इच्छा हो, प्रबन्ध कमेटीकी शोभा बढ़ानेवाले महाशयोंके १० या १२ नाम और चुनकर धन्यवादकी पात्र बने। ८ वा प्रस्ताव तो उचित ही है। (६) केवल वैदिकके अर्थ ही नही, मेरी तो सम्मति है जैन दर्शनमें सर्व दर्शनोंके तत्त्व पर गम्भीर प्रणालीसे परामर्श (विचार) किया है। अतः प्रत्येक दर्शनका एक-एक अध्यापक पृथक् नियुक्त किया जाये। बिना ऐसा किये लोक-मनोरञ्जकता नही आ सकती। (१०) परिग्रह ही मूर्च्छा है। अत मेरी सम्मति है जहा तक हा ध्रौव्यफण्ड शीघ्र ही व्यय किया जावे। मैं अब विद्यालयसे अति दूर रहता हू। तथा परोक्षमें कुछ भी कार्य विद्यालयका करनेमें समय नहीं देता। अत· मेरा नाम सभासदोंसे पृथक् किया जावे। और न मैं विद्यालयकी कुछ रक्षा ही कर सकता हूं। अतः मेरा नाम सरक्षकतासे भी पृथक किया जावे।

---

श्रीयुत लक्ष्मीचन्दजी पन्नालालजी, दर्शनविशुद्धि

आपके सदुव्यहारसे, हम क्या, ससार प्रसन्न हैं। परन्तु हमारी या ससारकी प्रसन्नता सुखका कारण नहीं। सुखका कारण तो शान्ति है। और शान्तिके उपाय जो निरूपण किये गये हैं, उन्हें लोग ढोंगमें गणना करने लगे हैं। इसीसे स्वाध्याय आदिमें लोगोंकी रुचि हट गई। आज श्री शिवप्रसाद जीकी यदि इस ओर प्रवृत्ति होती, तो समस्त कटरा-मण्डली उस मार्गमे लग जाती। परन्तु वह इस समय बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी ही नही, असाधारण बुद्धिमान भी हैं। वह चाहते तो एक सागर विद्यालय क्या, कई विद्यालय सुधार देते। परन्तु इस ओर लक्ष्य नही। श्रीमान् प० मुन्नालालजीकी प्रवृत्ति भी अब कई प्रकारकी बाधाऐ आनेसे, इस ओर तटस्थ है। श्री राजाराम सिघई पुरुषार्थी हैं, परन्तु व्यापारसे अवकाश नहीं। श्रीयुत गिरधारी सिघईके मरनेसे श्री पलटूरामजीने धर्मादा ही बन्द कर दिया। इसमे क्या पुरुषार्थ हुआ? अपने पैर पर स्वय कुल्हाडी पटक ली। श्रीयुत माणिक्य चौकवाले तत्त्वज्ञ और धर्मके कामोमे सहायक थे, सो अब वह न जाने क्यों इतने मध्यस्थ हो गये कि इस ओर की सुध लेना ही भूल गये हैं। रहे सिघईजी, सो वे तो इतने सरल हैं कि दूसरोंकी बात का उत्तर देकर मूल कार्योंसे उदास हो जाते हैं। बडा बाजार तो बडा बाजार ही है। उसे अवकाश ही नही। पाठशालाकी रक्षा प्रायः आपत्ति कालमे कटराने की है। अब वह भी यदि बड़े बाजारके संसर्गसे तद्रूप हो गया, तब बेचारे विद्यालयकी

क्या दशा होगी, सो भगवान् जानें या कटरा जानें। मौजीलालजीका बडा पुरुषार्थ इन कार्योंमें रहता था, सो अब तो वह भी स्वप्नकी कथा हो गई है।

× × ×

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

हमारी प्रवृत्ति अनादि कालसे परमें आपा मान रही है। जब परमें आपा माना तब हमारे अनुकूल यदि वह न हुआ तो दुःख होना स्वाभाविक है। यदि परसे भिन्न अपनेको मानते, तब दुःख होनेका अवसर ही नहीं आता। इसीसे श्रीकुन्दकुन्द महाराजने सर्वसे यह निश्चय करानेका प्रयत्न किया कि जीव भिन्न और अजीव भिन्न है। भिन्नतामें कारण असाधारण गुण ही मुख्य है। यद्यपि रागादिक जीवके ही हैं, किन्तु वे परके निमित्तसे ही हैं, अतः औदयिक भाव भी जीवके नहीं हैं। यही श्रीकुन्दकुन्द देवने कहा है—

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं;
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को।

( समयसार गाथा १९८ )

इस प्रकार सामान्य औदयिक भावोंका निषेध कर विशेष औदयिक भावोंको भी आचार्य निषेध करते हैं—यथा

पुग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमिक्को॥

( समयसार गाथा १९९ )

जैसे पुद्गल कर्मका विपाक नाना प्रकारका है, और उसके होते ही जीवके भाव नाना प्रकारके होते हैं ; वास्तवमें उनके होनेमें पुद्गल ही निमित्त है, अतः वह जीवके नहीं हैं, उसी प्रकार पुद्गल कर्म मोहनीयका विशेष भेद रागादि प्रकृति है, उनके उदयमें जीवके राग द्वेषादि अनेक प्रकारके भाव होते हैं। वास्तवमें वह भाव भी जीवके नहीं है ; किन्तु पुद्गलके ही है। इसका यह भावार्थ है कि वह जीवके स्वाभाविक भाव नहीं है, क्योंकि यदि जीवके निज-भाव होते, तब कभी भी पृथक् न होते। जो भाव कारणान्तर निरपेक्ष होता है, वह विनाश नहीं होता। जैसे अग्निमें स्वाभाविक उष्णता है और वह कदापि अग्निसे पृथक् नही होती।

× × ×

श्रीयुत महाशय चिरधीचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

शिक्षा-समितिके विषयमें लिखा, सो ठीक है। मेरी समझमें तो यह आया है कि मनुष्य ही उपकार कर सकते हैं जो अरहन्तको भूल जावें और अन्तरंगसे आपको समझ जावें। हमने अपनेको ही नही समझा फिर परका क्या उपकार करेंगे ? मेरे हृदयमें यह वासना समा गई है कि आज तक कोई भी व्यक्ति संसारमें ऐसा नहीं हुआ, जिसके द्वारा परका उपकार हुआ हो। जैसी श्रद्धा अतीत कालकी है वैसी ही वर्तमान और भविष्यकी है। हाँ, जिन्होंने जो भी परोपकार किया, उसका अर्थ मैं

यह समझ रहा हूं कि जो कुछ काम जीव करता है वह अपनी कषाय-जन्य पीड़ाके शमनके अर्थ करता है। फिर चाहे वह काम परके उपकारका हो, चाहे परके अपकारका हो। लोक उसे परोपकारी और परोपकारी शब्दसे व्यवहृत करते हैं। पुण्यके कामको लीजिये—आचार्य यह सोचकर कि लोगोंमें तत्त्वज्ञान हो, शास्त्रकी रचना करते हैं, और उससे जीवोंको तत्वज्ञान भी होता है; किन्तु यथार्थ दृष्टिसे विचार करो तो आचार्यने यह कार्य परके अर्थ नहीं किया; किन्तु सँज्वलन-कषायके उदयमें उत्पन्न हुई वेदनाके प्रतिकारके अर्थ ही उनका यह प्रयास हुआ। परको तत्वज्ञान हो, यह व्यवहार है। उस कषायमें ऐसा ही होता है। सो, यदि आप शिक्षा-समिति बनानेकी चेष्टा करनेका प्रयास करेंगे, तो यथाशक्य सफल भी होंगे। और यदि उस कार्यमें पूर्ण सफलताकी अभिलाषा है, तब उस जातिकी आत्मामें कषाय कर लो। अथवा जिसे सहायक बनाना चाहते हो, उसे भी उसी तरहकी कषाय पैदा कर दो। संसारमें जितने भी कार्य होते हैं, प्रथम अन्तरङ्गमें तज्जातिकी कषाय होती है; और उस कषायसे यह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। व्याकुलता होनेसे अन्तरंग निरन्तर दग्ध रहता है। यह बेचैनी ही इसे कार्य करनेमें प्रेरक होती है। और तब यह यथाशक्ति

प्रयत्न करता है। और तभी उस कार्यके सम्पादनके अर्थ उसके असली कारणकी खोज लेता है। जब कारण कूट एकत्रित हो जाते हैं, तब अविलम्ब (शीघ्र) कार्य-सिद्धि हो जाती है।

जिन्हें संसार बन्धनसे छूटनेकी इच्छा है, वे प्रागवस्था (शुरू-शुरू) में जातिकी कषाय जब तक आत्मामें उत्पन्न न करेंगे। नहीं छूट सकते। मोक्षके अर्थ भी पहिले मोक्षकी अभिलाषा ही उसके आविर्भावमें कारण होगी। एक न्याय-वेत्ताने यह लिखा है—"इष्ट ज्ञात्वा इष्टो पाये भवा प्रवर्तन्ते, अनिष्टे ज्ञात्वा न तो निवर्तन्ते।"

+ + +

श्रीयुत प० पन्नालालजी, इच्छाकार

पत्र सागरके विषयमें दे चुका हू। सस्था रजिस्टर्ड है। लोगोंने उसका नाम जैन विद्यालय कर दिया। यह उन लोगोंने क्यों किया, वे जानें। परन्तु मुझे इस बातका खेद है कि आप प्राय निरन्तर यह कहा करते हैं कि पार्श्वप्रभुके ज्ञानमें जो आया सो होगा; फिर सागर विद्यालय आपके जीते-जीते नष्ट न हो जावे, ऐसी शका क्यों? हमारे देखते-देखते हमारे पिता मर गये, मा मर गई, पितामह और पितामही मर गई, भाई मर गया, भावज मर गई, काका मर गये, काकी मर गई, और तो क्या, जिसने इसको मनुष्य बनानेका प्रयत्न किया, वह पूज्य बाईजी भी मर गई। जिन्होंने ज्ञानदान दिया, वे गुरु भी मर गये।

जिन्होंने व्रत दिया वे महाशय भी मर गये। यदि मेरे समक्ष सागर विद्यालयकी व्यवस्था अन्यथा हो जावे, तब मैं क्या कर सकता हू ? यह भी सम्भव है कि मैं स्वय मर जाऊ॰ और विद्यालय बना रहे। फिर ऐसा कैसे निश्चय कर लिया कि मेरे जीवनमें वह नष्ट हो जावेगा ? अतः आप इन विकल्पोंको छोड़कर शान्त रहिये, जो होना होगा वही होगा। आप पुरुषार्थी हैं तथा स्फूर्ति भी आपमें है, विद्यालय पर आपकी दयादृष्टि भी है। जो इच्छा हो, सो करिये। मेरी तो भावना यह हो गई है कि किसीसे किसीका कुछ नही होता। कषायोंके सब खेल हैं। ग्रन्थ रचना है वह भी एक कषायकी क्रीडा है। विना कषायका कोई कार्य नही। जो है वह स्वात्मगम्य है, इन्द्रिय जन्य ज्ञानका विषय नही।

× × ×

श्रीयुत महाशय बाबा भागीरथजी वर्णी, योग्य इच्छाकार,

आपका पियूष-पूरित पत्र आया। समाचार जाने। मैं आपका विशेष भक्त हूँ। अत· आप मेरे लिये आशीर्वादको छोडकर शब्दान्तर न लिखें। आपके सहवाससे मुझमें बडी निर्मलता थी। महाराजजी, मेरी तो यह श्रद्धा है कि जो भी भेष है, सर्व कषायोंके ही कार्य हैं। परन्तु यह सर्व चर्चा भी कषायोंके उदयमें ही होती है। महाराज, आप मेरी एक तुच्छ सम्मति मानिये। अब आपकी आयु दीर्घ नहीं। सब तरफसे सङ्कोचकर खातौलीमें ही समाधि मरणकी योग्यता जानकर क्षेत्रन्यास करिये। कषायोंके उदय जीवसे नाना कार्य कराते

है। परन्तु पुरुषार्थकी भी वह तीक्ष्ण खड्ग-धार है कि उस उदय जन्य रागादिकोंकी सन्ततिको निर्मूल कर देती है। अर्जित रागादिककी उत्पत्तिको हम नहीं रोक सकते। परन्तु उदयमें आये रागादिकों द्वारा हर्ष-विषाद न करें—यह हमारे पुरुषार्थका कार्य है। संज्ञी पंचेन्द्रियको मुख्यता पुरुषार्थ द्वारा ही कल्याण करनेकी है। कषायोंके उदयपर रोना आपसे निस्पृही व्यक्तिको तो सर्वथा अनुचित ही है। द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई, और न होगी। चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव सम्पन्न महापुरुषोंसे भी संसारमें शान्ति नहीं आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई; किन्तु श्रीवीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थंकरके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव संसारमें व्यापकरूपसे प्रसारित हुआ, जिसका आंशिक रूप अब भी संसारमें है। चक्रवर्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नहीं रही, क्योंकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गल-कृत है। और धर्मका असर आत्मामे होता है, इसलिये अब भी बहुत आत्माएँ ऐसी है जिनमें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अंश है। यह मानना ही मिथ्या है कि धनिकोंका धन धर्ममें नहीं लगता, धनसे धर्म होता ही नहीं; फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका धन। धर्ममें नहीं लगा' व्यर्थ है। हम भी क्या करें? मोहके द्वारा असंख्य कल्पना करके भी शान्त नहीं होते।

---

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मोही जीवका कल्याण तो इसीमें है कि बाह्यमें जो मोहके प्रबलतम निमित्त हैं उन्हें छोड़े। अनन्तर, जो तदपेक्षा कुछ न्यून निमित्त हैं उन्हें छोड़े। पश्चात् राग-द्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्र गुणके साधक बाह्य व्रतादिक अंगीकार करे। यह तो आगमकी आज्ञा है। आत्माका सबसे प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, जिसके द्वारा ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्या चारित्ररूप रहता है। और मिथ्यात्व क्या वस्तु है? सम्यक्त्व की तरह अनिर्वचनीय है। केवल उसके कार्यको देखकर ही हम प्रशमादि द्वारा सम्यक्त्वके सद्भावकी तरह उसका अनुमान कर सकते हैं। उसके कार्य स्थूलरूपसे तो नाना प्रकार हैं; जैसे—शरीरादिक पर-द्रव्योंमें स्वात्म-तत्त्वकी कल्पना करना तथा आत्माकी सत्ता ही न स्वीकार करना—अथवा पृथ्वी आदिके मिलनेसे मदिरावत् आत्म-तत्त्वकी सत्ता मानना—अथवा सच्चिदानन्द व्यापक आत्माकी सत्ता स्वीकार करना—अथवा सर्वथा शुद्ध तथा ज्ञानादि गुणोंसे सर्वथा भिन्न आत्माकी सत्ता मानना आदि नाना प्रकार हैं।

× × ×

श्रीयुत बाबू ठाकुरदासजी, दर्शनविशुद्धि

आपका अभिप्राय जैनधर्मके वास्तविक प्रसारके अर्थ अति उत्तम और विशाल है, होना भी समुचित है। जैनधर्मके मर्मज्ञका ऐसा ही भाव होता है। आप जैसा बुन्देलखण्डको दरिद्र समझ रहे हैं, वैसा नहीं है। हाँ, अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा

अवनति-दशामें अवश्य है। परन्तु ऐसी अवनति-दशा नहीं कि धर्म-कार्यमें कुछ न कर सके। परन्तु अभी उस प्रान्तकी दृष्टिमें विद्या-विषयमें संलग्नता नहीं; यद्यपि अब भी उस प्रान्तके ही विशिष्ट विद्वान प्रायः अच्छी संख्यामें निकलेंगे। और वे चाहें तो अपने आयका एक $\frac{1}{10}$ देकर आपके मनोरथकी पूर्ति कर सकते हैं। परन्तु उन महाशयोंका इस ओर लक्ष्य नहीं। धनाढ्य भी कम नहीं, परन्तु उनका भी पवित्र भाव इस ओर नहीं। अभी तो जो उनके चित्तमें आता है, करते हैं। और कतिपय विद्वान भी उनकी हामें हा मिलानेमें ही स्वकीय पाण्डित्यको चरितार्थ करनेमें अपनेको धन्य समझते हैं, जो कुछ व्यक्ति उद्धार चाहते हैं वे आपेसे बाह्य और प्रतिकूल प्रचारसे उन्हें हटाना चाहते हैं। इससे उल्टी क्षति ही उस कार्यमें करते हैं।

× × ×

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दुःखका मूल कारण शारीरिक व्याधि नहीं, किन्तु शरीरमें जो ममत्व-बुद्धि है, वही दुःखका मूल है। दुःख क्या वस्तु है? आत्मामें जो परिणमन न सुहावे, वही तो दुःख है। अर्थात् जिस वस्तुके होनेमें आकुलता हो, चैन न पड़े, वही तो दुःख है। अतः जो यह वैषयिक सुख है, वह भी दुःख-रूप ही है; क्योंकि जबतक वह होते नहीं, तब तक तो उनके सद्भावकी आकुलता रहती है,

और होनेपर भोगनेकी आकुलता रहती है। आकुलता ही जीवको नहीं सुहाती। अतः वही दुःखावस्था है। भोग-विषयिणी आकुलता दुःखात्मक है। इसमें तो किसी को विवाद ही नहीं। परन्तु शुभोपयोगसे संबन्ध रखनेवाली जो आकुलता है, वह भी दुःखात्मक है। यदि ऐसा न होता, उसके दूर करनेके अर्थ प्रयास है वह निरर्थक हो जावे। कहाँ तक इसकी मीमांसा की जावे? जो शुद्धोपयोगके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, वह भी आकुलताकी जननी है। अतः जो भाव आकुलताके उत्पादक हैं, वे सर्व ही हेय हैं। परन्तु, संसारमें अधिकतर भाव तो ऐसे ही हैं; और उन्हींके पोषक प्रायः सब मनुष्य हैं।

× × ×

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

किसी सस्थाको चलानेके लिये सबसे प्रथम तो प्रेम-भाव होना चाहिये। इसके अतिरिक्त ज्ञान और उद्योग होना चाहिये। हमारे पास न ज्ञान है, और न उद्योग। यदि वह होता, तो सागर-सस्थाको त्यागकर इतने दूर-देशमे न भागता। अत. केवल सद्‌भावनाको छोड़कर मैं उस प्रान्तका क्या उपकार कर सकता हू? यह निश्चय है कि इस समय कोई भी सस्था बिना द्रव्यके नही चल सकती। आजकल प्रान्तीय सभाओंके होनेसे इतना प्रबल पक्षपात हो गया है कि लोग अपनी

जातिके बालकोंको छोड़कर इतर प्रान्तके छात्रोंको सहायता देना नहीं चाहते। यह भूल संस्थाओंके संचालकों के मध्य भी समा गई है कि वे अपनी जातिके छात्रोंका पक्षपात करनेसे बाज नहीं आते। ऐसी अवस्थामें आप बाहरसे सहायताकी आशा करें, सो व्यर्थ है। बड़े-बड़े धनाढ्य अपने ही नगरमें अपना विभव प्रदान करते हैं। यदि इस विषयमें संदेह हो तब दो-चार प्रमुख धनाढ्योंके कृत्योंसे निःशंक हो सकते हो।

× × ×

श्रीयुत बाबू सखीचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके शरीर और मनकी दुर्बलता जानकर आश्चर्य हुआ। शरीर पर-द्रव्य है, वह दुर्बल हो या सबल हो, उससे हमारी कुछ हानि या लाभ नहीं। परन्तु मन तो आपका आपके अधीन है, उसकी दुर्बलताको दूर करना आप जैसे ज्ञानी पुरुषके लिए कोई कठिन बात नहीं। अन्तरङ्ग सावधानीसे उसे पृथक् करनेकी चेष्टा जहाँ सफल हुई, तहाँ अनायास ही शरीरकी दुर्बलता दूर हो जावेगी। हम अनादि कालसे इस प्रकारके कायर बन रहे हैं, जिससे यह संसार हमारा पिण्ड नहीं छोड़ता। हम विकार-भावोंको निज मान रहे हैं और उसीकी रक्षाके निमित्त सतत इन बाह्य पदार्थोंके व्यामोहमें अपना सर्वस्व दे रहे हैं। परन्तु फिर भी, जिस संसारको दुःखका कारण समझते हो, उसीसे राग करते हो, यह कितनी प्रबल भूल है! क्यों भाई, संसारको प्रायः सब ही दुःखात्मक कहते हैं, यदि

ससार दु ख-रूप ही है, तब यह जो हमको शुभ कर्मोंके करनेका उपदेश दिया जाता है, सो क्यों? क्योंकि शुभकर्म भी तो बन्धक हैं। मेरी समझमें ससारमें दु ख दिखाकर लोगोंको उत्साहसे बञ्चित कर देना है। असलमें ससार किसी स्थानका नाम नहीं, रागादि-रूप जो आत्माकी परणति है, उसीका नाम ससार है; और जहा रागादि परिणामोंका अभाव हुआ, वहाँ आत्माको मोक्ष है। अत. संसारी और मुक्त—ये दोनों ही आत्माकी अवस्था-विशेष हैं। इनमेंसे एक अवस्था आत्माको आकुलता उत्पन्न करती है, अत. उसका नाम ससार है; और दूसरी अवस्था निराकुलताकी जननी है, उसीको मुक्तावस्था कहते हैं। अतः यदि ससारसे छूटना चाहते हो, तो जो ससारका जनक-भाव है उसे छोड़ो; उसके छोड़नेसे ही जो अवस्था सुखदा है, हो जावेगी।

× × ×

श्रीयुत ब्रह्मचारीजी, योग्य इच्छाकार

आपका यहाँ दिवाली बाद आनेका विचार है, सो आइये। हमसे जो कुछ बनेगा आपकी वैयावृत्त करनेमें त्रुटि न करेंगे। आपको कुछ सन्देह मालूम होता है, उसकी आवश्यकता नही। अब तो अन्तिम पथकी ओर जा रहे हो। सो अभ्रान्त रहना चाहिये। स्पष्ट उत्तर आपकी श्रद्धाके ऊपर है। आपने जो लिखा है कि कम्परोग हो गया, सो असाताके तीव्रोदय या उदीरणामें ऐसी अनेक अवस्था होती है; किन्तु यदि उसके साथ मोहोदयकी बलवत्ता नही, तब वह कुछ दु.खानुभवमें

आत्म-गुणका घातक नहीं ; क्योंकि "घादिवं वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददजीवं" अत:, आप विज्ञ हैं, उसे अकिंचन ही समझते होंगे। जरा रोगमें भी यही चरितार्थ है। 'जैनमित्र'की सम्पादकी छोड दी या छूट गई, यह आपके अनुभव गम्य है ; किन्तु 'सनातन-जैन' के अभिप्रायको छोड दिया होगा। वह भी इस समय छोडनेका अवसर है। 'जैनमित्र'की सम्पादकी छोड दी, यह तो उचित ही किया। क्योंकि अब अवस्था भी तो अन्यथा हो गई। साथमें 'सनातन जैन'की भी सम्पादकी छोड दीजिये। अब आपका अन्तिम काल है। क्या ही अच्छा सुवर्ण अवसर आपके हाथ है, सर्व प्रकारकी शल्यको छोडकर परमपथके पथिक बनिये। किसीके कहनेमे न आकर, 'विधवा-विवाहादि शास्त्र-असम्मत है' यदि इसको आप लिख देवें, तब अति उत्तम हो।

× × ×

श्रीमान् शास्त्रीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि आपके सन्देशका समाजमें आदर है। न-जाने समाजके कौनसे व्यवहारसे आपने यह निश्चय किया है। मेरा यही सन्देश है कि "जो जो देखी वीतरागने, सो-सो होसी वीरारे। निश-दिन जतन करहु सुखका तुम, काहे होत अधीरारे" अपना परिचय जितना हमको है, उतना आपको नही। अब हम समाजसे भिक्षा माँगनेमें असमर्थ हैं। हाँ, हमारे भोजनादि खर्चके लिये स्वर्गीय बाईजी, स्वर्गीय मूलचन्दजीके यहाँ १०००) रु० इस शर्तपर दे गई है कि भैया

गणेशप्रसादको इसका व्याज मात्र मिले। उनके सुपुत्र ७॥) रु० भेजते हैं। उनमेंसे यावज्जीव २॥) मासिक आपके विद्यालयके अर्थ तुच्छ भेंट अर्पित करता हूँ। आशा है, आपका डेपुटेशन उसे स्वीकार करेगा। समाज आपको खजाची कर देवे, इसमें मुझे हर्ष ही है। मेरी यह श्रद्धा है कि "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरारे।" परन्तु समाजकी दशा निम्न-लिखित है—"ऊषरे सरसि शाल्मलि वने दावपावकचितेऽपि चन्दने। तुल्यमर्पयति वारि-वारिद कीर्तिरस्तु गुणविज्ञता गता" हमको जो लिखना था, लिख चुके। विशेष कष्टका अनुभव करना उचित नहीं। परसे द्रव्यकी याचना करनेके समान हम अन्य दुःख नहीं मानते।

\+ + +

श्रीमान् दाऊजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पर्यायकी अथिरता जान थिरताका उपाय करना ही कर्तव्य है। यद्यपि पर्याय-दृष्टिसे सर्वद्रव्य अनित्य है, परन्तु वह अनित्यता घातक नहीं, जिसमें गुणोंका विपरणमन हो। जहाँ गुण विकृत रहते हैं वही अनित्यता त्यागने योग्य है। अनित्यता तो वस्तु-स्वरूपमें ओतप्रोत है, उसका त्याग कौन कर सकता है? वस्तु स्वय उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

× × ×

श्रीयुत महाशय, योग्य इच्छाकार

कल्याणका मार्ग शान्तिमें है; और शान्तिका उदय मूर्च्छाके अभावमें है। मूर्च्छाके अभावके अर्थ पर-पदार्थोंसे रागादि

त्यागना चाहिये। पदार्थ दो प्रकारके हैं—शुद्ध और अशुद्ध। जो शुद्ध पदार्थ हैं, वे मोक्षमार्गमें कथञ्चित् सहकारी हैं, और जो अशुद्ध पदार्थ हैं, वे ससारमे कथञ्चित् सहकारी हैं। परमार्थ दृष्टिसे कथञ्चित् दोनों ही बन्धके साधक होनेसे ससारके ही कारण हैं। परमार्थसे तो उनको सहकारी मानते हैं। यही ससारका कारण है।

× × ×

श्रीयुत प० जगन्मोहनलालजी, दर्शनविशुद्धि

यदि आपके पत्रमे अवकाश हो, तो इसे प्रकाशित करा दीजिये। जैन-शिक्षा सस्थाओंके एकीकरणमें श्री सेठ बिरधीचन्दजीका जो लेखों द्वारा प्रयास है वह प्रशसनीय है। वर्तमानमें इससे यदि उपशान्त मोहकी शान्ति चाहें, तब क्या उसका आस्वाद ले सकता है? प्रयास भी करें, तब भी एक बार उसमें सुफल उत्पन्न नही हो सकता। हाँ, उस शान्तिके अर्थ प्रथम कारणोंकी निर्मलता द्वारा सप्तम गुणस्थान आरोपण कर पश्चात् छठे गुणस्थानमे दीक्षाका धारण कर असख्य बार ६ से ७ मे और ७ से ६ मे आरोहण-अवरोहण करता हुआ एक बार सातिशय अप्रमत्त होकर फिर करणोकी निर्मलता द्वारा क्रमसे उपशान्त मोह हो सकता है। अत: सम्पूर्ण भारतवर्षकी सस्थाओंकी बातको इस समय छोड़कर जो सी० पी० और बुन्देलखण्डकी सस्थाएँ हैं, उनके अर्थ प्रयास करनेको आप लोग चेष्टा करिये। चेष्टा करनेमें जितनी परिणामोकी निर्मलता है, उसे कदापि न त्यागिये। उसमें

मानापमानकी वासना भी न हो। मैं भी भगवान्से यही प्रार्थना करता हूं कि हे प्रभो, इस प्रान्तके वासियोंको ऐसी सुमतिका सहारा दो, जो इनका उद्धार हो। इस समय इनकी दशा दयनीय है। यदि इस समय आपने सहारा न दिया तब इनका उद्धार होना अशक्य है। हम लोगोंका आपसे कहनेका पूर्ण अधिकार है; क्योंकि हमारा प्रान्त ही इस विपत्तिकालमें भी आपके साङ्गोपाङ्ग विभवको प्राय प्रतिवर्ष दिखा रहा है। यद्यपि निष्काम भक्तिकी विशेष महिमा है; परन्तु यह कामना भी तो आपके ही दिव्यज्ञानकी प्रभावनाके लिये है।

अब संस्थाओंके सञ्चालकोंसे भी मेरा नम्र कहना है कि अन्तरंग परिणतिको निर्मल कर व्यर्थ जो समाजके धनका दुरुपयोग हो रहा है, उसकी रक्षाके लिये इन संस्थाओंको एक सूत्रमें सङ्गठन कर यथायोग्य कार्य चलानेका प्रयास करिये। केवल शिक्षा-संस्थाओंके ही एकीकरणकी आवश्यकता नहीं, जो रुपया मन्दिरोंका है उसकी भी व्यवस्थाकी आवश्यकता है। परन्तु एकताके साथ हमें समाजके एकीकरणकी आवश्यकता है। यदि वह एकीकरण नहीं कर सके, तब सब स्वांग ही है। परन्तु साहूकारका स्वांग दुर्लभ है। अत उस स्वाँगके विना आपके दोनों एकीकरण अल्पकालमें शिथिल हो जायेंगे। अतः सबसे पहिले समाजका एकीकरण करनेका प्रयास, जिसके सद्भावमें क्षीणमोह होनेपर केवल ज्ञानकी उत्पत्ति जैसे ध्रुव है, उसी प्रकार यह कार्य अनायास होनेकी सम्भावना है।

———०———

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

अभी आप देवाधिदेव पार्श्वप्रभुके ऊपरी भक्तोंके भक्त हैं। यदि उनके ( साक्षात् पार्श्वप्रभुके ) भक्त होते, तो एक नन्दीश्वर द्वीपकी रचना क्या, जहां अनन्तानन्त सिद्ध विराजमान हैं उस स्थानकी प्राप्तिके अर्थ भी इतनी व्यग्रता करते। अभी दृष्टि आपकी बाह्यकी ओर है। आप विद्वान् हैं और कार्य करनेमें तथा वचनकलामें पटु हैं। परन्तु वह पटुता जो श्रेयोमार्गकी साधक है, उसकी ओर लक्ष्य नहीं है। अन्यथा पार्श्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट पथके पथिक होकर भाद्र मासमे इतस्तत न न भटकते। मेरा तो दृढ विश्वास है कि जो श्रीप्रभूका अन्तरङ्गसे अनुचर होगा, वह इतना व्यग्र न होगा। आपने जो व्रत लिया है, वह दिगम्बर साधुसे लिया है। उसकी रक्षा पूर्वक भ्रमण तथा याचना करनी चाहिये। सच्चा भक्त तो उनके पथका पथिक होकर अनेकोंको लेकर चलता है। आपने विचार किया था भाद्र भर कहीं नहीं जायेंगे, परन्तु उसका निर्वाह न किया। विशेष क्या लिखे? हमारा विचार तो अब भगवानकी जन्म-नगरीकी ओर हो रहा है।

× × ×

श्री विदुषी पतासी बाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री बाबू गोविन्दलालके द्वारा आपके आनेका समाचार ज्ञात हुआ। आपका स्वास्थ्य पहिलेसे अच्छा होगा, क्योंकि निमित्त कारण गयाकी अपेक्षा अच्छे मिल रहे हैं। स्वास्थ्यसे मेरा तात्पर्य है आभ्यन्तर-शुद्धिसे, ज्ञानका बुद्धिसे जो पृथक्

वस्तु है। संसारी जीव प्राय: आकुलित रहते हैं। क्योंकि मोही हैं। यदि मोही न हों, तब आकुलित होनेकी सामग्री न होनेसे सर्वदैव-सन्तोषामृत पानके आस्वाद आनेसे इतर (अन्य समस्त) विषयोंमें उपेक्षित ही रहें। अतएव ज्ञानी जीवके अशुभोपयोगमें अनुपादेयता होना तो कोई बात नहीं; शुभोपयोगमें भी उपादेय बुद्धि नहीं। अविरत अवस्थामें चारित्र मोहके तीव्र और मन्दोदयमें अशुभोपयोग और शुभोपयोग-रूप सम्यग्दृष्टिकी प्रवृत्ति हो जाना और बात है तथा उपादेय और अनुपादेय भावोंका होना और बात है। जो मोही जीव हैं, वे निमित्तोंकी मुख्यतासे ही मोक्षमार्गके भावको पथिक मानते हैं। अज्ञानी जीव कर्तव्य कल्पना द्वारा ससारका पात्र बनता हैं। सुखका मूल कारण सुखके बाधक कारणके त्यागसे होता है। केवल बाह्य कारणोंके दूरकर देनेसे अन्त: शान्तिका उद्गम नही होता। इसीसे आचार्योंने भाव-शुद्धिके बिना द्रव्यलिङ्गको पाखण्डी लिङ्ग कहा है। अन्तरङ्ग शुद्धिके उदयपर तिर्यञ्च भी मोक्षपथ पा जाता है।

× × ×

श्री शान्तिमूर्ति महादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

माता-पिताने हमारा महान उपकार किया जो अनेक विघ्न बाधाओंसे सुरक्षित कर इस योग्य बना दिया कि हम चाहें तो अब आंशिक मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं। बाबाजी महाराज का आपके ऊपर उससे भी अधिक उपकार है, जो उस उपकार से आपके पवित्र हृदयमें जैनधर्मकी मुद्रा अंकित हो गई। यदि आप उनके उपकारको स्मरण करती हैं, तो यह उचित ही है।

क्योंकि "नहि कृतं उपकारं साधवो विस्मरन्ति।" परन्तु तात्त्विक बात तो यह है कि कल्याणका उदय परमार्थसे आत्मा ही में होता है। और आत्मा ही उसमें उपादान कारण है, इतर तो निमित्त ही हैं। नौकापर बैठे रहकर नहीं कोई पार होता, किन्तु पार होनेके समय (उस पारके तटपर पैर रखते समय) नौका त्यागनी ही पड़ती है। मोक्ष-मार्गके उपदेष्टा श्रीपरमगुरु अर्हन्त हैं, उनके द्वारा ही इसका प्रकाश हुआ है। अतः हमें उचित है कि अपने मार्ग-दर्शकको निरन्तर स्मरण करें। परन्तु उन्हीं प्रभुका आदेश है कि यदि मार्गद्रष्टा होनेकी भावना है, तब हमारी स्मृति भी भूल जाओ, और जिस मार्गको हमने अंगीकार किया, उसीका अवलम्बन करो। अर्थात् पदार्थ मात्रमें रागादि परणतिको त्यागो। क्योंकि यह परणति उस पदकी प्राप्तिमें बाधक है। 'प्रवचन सार' में कहा है —

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं॥

(अध्याय १ गाथा ८१)

जिसका मोह दूर हो गया है, ऐसा जीव, सम्यक् स्वरूपका प्राप्त करता हुआ यदि राग द्वेषको त्याग देता है, तब वह जीव शुद्ध आत्म-तत्त्वको प्राप्त करता है। और कोई उपाय या उपायान्तर आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें साधक नहीं। यही एक उपाय मुख्य है। प्रथम तो मोहका अभाव करके सम्यक् दर्शनका लाभ करो। ज्ञानमें यथार्थताका लाभ उसी समय होता है। केवल रागद्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्रकी उपयोगिता है।

चारित्रका फल रागद्वेष-निवृत्ति है। यहां चारित्रसे तात्पर्य चरणानुयोग प्रतिपाद्य देश (एक देश) चारित्र और सकल चारित्रसे है। और जो कषायकी निवृत्ति-रूप चारित्र है वह प्रवृत्ति-रूप नहीं। उसका लाभ तो जिस कालमें कषायकी कृशता है, उसी कालमें है। उसकी शान्ति वचनातीत हैं। अत प्रवृत्तिसे उसका सद्भाव नही। वह (प्रवृत्ति) तो उसकी घातक ही है। किन्तु उसके सद्भावसे वह हो सकता है; अतः उपचारसे उसे भी चारित्र कह देते हैं; और पच महाव्रत को भी इसीसे चारित्रमें गणनाकी हैं। वास्तवमें तो महाव्रत आस्रवका ही जनक है, परन्तु महाव्रतके होनेपर वह होता है इसलिए उसे भी चारित्र कह दिया। वास्तव-दृष्टिसे तो वह प्रवृत्ति-रूप है और न निवृत्ति-रूप है, वह तो विधि-निषेधसे परे अपरिमित शान्तिका दाता अनुपम आत्माका परिणाम है, जिसका वर्णन शब्दोंसे बाह्य है। फिर भी उसके विषयमें आचार्यों ने बहुत कुछ कहा है। 'प्रवचनसार' (अ० १ गाथा ७) में कहा है—

चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥ ७ ॥

आत्माके स्वरूपमें जो चर्या है, उसीका नाम चारित्र है। वही वस्तुका स्वभाव-पनेसे धर्म है। अर्थात् शुद्ध चैतन्यका प्रकाश ही धर्मका अर्थ है। वही वस्तु यथावस्थित आत्म-स्वभाव पनेसे साम्य भाव है। और जहाँपर दर्शनमोह और चारित्र मोहके अभावसे मोह और क्षोभका अभाव होनेपर आत्माकी अत्यन्त निर्विकार परिणति उद्भूत होती है, उसी निर्मल भावका

नाम साम्यभाव है। वह इस जीवका ही परिणाम है। उसीको श्री पद्मनंदि महाराजने इन शब्दोंमें कहा है—

मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागंगसंगोज्झिता।
शुद्धानन्द मयात्मनः परिणतिर्धर्माख्यया गीयते ॥

(पद्मनंदि पञ्चविंशतिका श्लोक ७)

अतः इन निमित्तोंकी उपयोगिता वहीं तक है, जहाँ तक हम मोही हैं। मोहके अभावमें इनका कोई उपयोग नहीं। स्वामीने कहा है—

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥

( 'समयसार' अ० ३ गाथा १५० )

कर्म करना और बात है तथा कर्मका होना और बात है। बड़े-बड़े महर्षियोंने भी उत्तम-उत्तम ग्रन्थ रचकर जगतका कल्याण किया, फिर भी कर्ता नहीं बने। यदि उनके आशयमें कर्तव्य होता, कदापि मोक्षके पात्र न होते। अतः अपने पवित्र भावोंके उदयके अर्थ निरन्तर जैसा पदार्थ है उसी रूपमें प्रतीति रहना चाहिये। यथा शक्ति श्रद्धाका जो विषय है, उसमें रमण करनेकी स्थिरता होनी चाहिये। अत जो निःश्रेयसके अभिलाषी हैं, वे वाह्य व्यवहारमें अनासक्त रहते हैं। "जिन नहि चाखी मीसरी, उनको कचरा मिट्ठा।" जिन्होंने परमार्थ-रसामृतका आस्वाद ले लिया, वे इस व्यवहारके आस्वादको नहीं चाहते। विशेष क्या लिखूं ? यह पत्र श्री त्रिलोकचन्दको भी सुना देना। उनके पत्रका उत्तर फिर दूंगा। उन्होंने पूछा है कि विग्रह

गतिमें ऋजुगतिवाला एक समयमें जन्म लेता है, उसके कौन योग है? वहाँ उसके मिश्र योग है। क्योंकि वह जहाँ जन्म लेगा, तदनुकूल वर्गणा ग्रहण करने लगता है; इसीसे उनके आनुपूर्वी भी अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं। आपकी भद्रता ही भद्र-परिणामकी साधक है; और तो निमित्त मात्र है। तुम्हारा चिद्रूप ही आत्म-कल्याणका हेतु है। उसमें जो वर्तमानमें अशक्तिसे रागादिककी उत्पत्ति है, वह समय पाकर जायेगी। देशव्रतमें महाव्रतकी शान्ति व्यक्त नहीं हो सकती।

× × ×

श्रीयुत महाशय लाला त्रिलोकचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

मुझे सागर छोड़े तीन वर्ष हो गये, अतः कुछ भी वस्तुका पता नहीं। "श्लोकवार्तिक" का थोड़ा सा अनुवाद तो था ही, विशेष नहीं था। अब उसमें कुछ भी लाभ न होगा। आप तो प्राचीन महापुरुषोंने जिन ग्रन्थोंकी भाषा टीका की है, उन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करिये। वह रस आजकलकी भाषामें नहीं आसकता, और न आजकलके विद्वानोंमें वह निर्मल भाव हैं। ग्रन्थके बनानेमें भाषाका परिज्ञान तथा उनके अनुकूल श्रद्धा और आचरणकी महती आवश्यकता है। आप तो अब, विशेष ऊहापोहको एक तरफ रखकर जिसके लाभके लिये यह सब भगीरथ प्रयत्न है, उसके लिए अति निराकुलताको धारण कर उसीके उन्मुख अपनेको करनेका प्रयत्न करिये। जिस तत्त्वका आस्वाद लेना चाहो, उसमें

तन्मय हो जाओ। तभी उसका सच्चा आस्वाद मिलेगा। आर्त्त-रौद्र भी ध्यान हैं और धर्म-शुक्ल भी ध्यान है; इसमें शुक्ल ध्यानका वर्तमान कालमें अभाव ही है। बाकी तीनमें भी धर्म-ध्यानकी गौणता है, सो रहे। सो हीन शक्तिवाले उनको करनेमें भी अशक्य हैं। हा, उनका अभाव नहीं। अभी हिटलर मुसोलिनी उनके दृष्टान्त प्रस्तुत हैं। परन्तु सब हिटलर नहीं। अतः जहाँ तक बने, अपनी योग्यताके अनुरूप कार्य करते जाइये। उतावलीमें कुछ नहीं। आपको सुमतिका सहवास अच्छा है। वह बालक यथानाम तथा गुण है। जिस परिपाटीको ग्रहण किया है, अति उत्तम है। त्याग-धर्मका महत्त्व बहुत ही पुण्यात्माके हृदयमें आता है। तद्रूप हो जाना तो इस पर्यायमें असम्भव ही है। हर एक वस्तुके लिए योग और द्रव्यादिकी आवश्यकता है। देवगण शक्तिशाली हैं और विशिष्ट ज्ञानियोंकी उनमें त्रुटि नहीं। परन्तु उनके आंशिक रूपसे भी त्याग नहीं होता। काश्मीरकी केशरकी उत्पत्ति क्या खतौलीमें चाहते हो? शान्ति उत्तम संहननवालोंके श्रेणी सम्मुखमें होती है। क्या उसका लाभ चतुर्थ पञ्चम गुणस्थान में हो सकता है? अत जो कुछ लाभ हुआ है, उसीका उपयोग करो। आकुलित न हो। विशेष क्या लिखें?

श्री शान्तिमूर्ति महादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

स्वाध्यायका मुख्य फल तत्त्व ज्ञान-पूर्वक निर्जरा है। क्योंकि यह तप है; और इसीसे इसका अन्तरंग तपमें समावेश है। परन्तु आजकलके लोग जितना महत्त्व उपवासादि तपोंको देते हैं, उतना इसे नहीं देते। इसका मूल कारण लोगोंकी बहिर्दृष्टि है। लोगोंकी जाने दो; हम स्वयं उसे महत्त्व नहीं देते। उपवासके दिन समझते हैं कि आज हमसे अनुचित प्रवृत्ति न हो जावे। ऐसा ध्यान बहुत लोगोंका रहता है। परन्तु स्वाध्याय-तपके अवसरमें, जो प्रति दिनका कार्य है, यह ध्यान नहीं रहता कि यह कार्य बहुत उच्चतम है। इस दिन जितनी निर्मलता हो सके, करना चाहिये। ध्यानको छोड़कर इससे उत्तम अन्य तप नहीं। परन्तु हमारी दृष्टि केवल स्वाध्यायसे ज्ञानार्जनकी रहती है, तपकी नहीं। हमारी तो यह श्रद्धा है कि यह तप उन्हींके हो सकता है, जिनके कषायोंका क्षयोपशम है। क्योंकि बन्धका कारण कषाय है; अतः जबतक उसका क्षयोपशम न हो, उस जीवके स्वाध्याय नहीं हो सकता, ज्ञानार्जन हो सकता है। और आज तो उसकी रूढि पन्ना पलटनेमें ही रह गई है।

—गणेशप्रसाद वर्णी

( ईसरी-पारसनाथ )

# संशोधन-पत्र

[ पृष्ठ ६०-६५ तक विराम-चिह्न आदिकी अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं, जिनका संशोधन असम्भव समझकर छोड़ दिया गया है ]

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २ | १ | जो व्यक्ति | वही व्यक्ति |
| ५ | २ | आत्मापर पदार्थों की | आत्म पर-पदार्थों की |
| ६ | ११ | परन्तु अन्त निर्मलता है | परन्तु अन्त निर्मलता है। |
| १३ | १ | सन्तोष न करना ही | सन्तोष करना ही |
| १८ | २ | पुरुषार्थसे | क्योंकि पुरुषार्थसे |
| २५ | १६ | आत्मा उसका | आत्मा है। उसका |
| ३० | १६ | 'स्वसंवेदनज्ञानेन' इत्यादि | स्वसंवेदनेन संवेद्योगम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं। |
| ४२ | ११ | कहीं संसार | कहते हैं कि संसार |
| ४३ | ४ | उनकी क्या स्वात्महितके | उनकी स्वात्महितके |
| ४८ | १६ | कुछ दिनेशान्तर है | कुछ दिन शान्त रहें |
| ५१ | २ | 'उसकी बन्ध नहीं, गृहस्थके उपासक त्यागी' आदि | उसको गन्ध नहीं। गृहस्थ-धर्मके उपासक त्याग-धर्मके मर्मको |
| ५२ | १७ | जो इनपर पदार्थोंके | जो इन पर-पदार्थोंके |
| ८६ | १२ | छूटें न मुक्ति | छूटें न भुगते |
| ११५ | १ | सतर्क | सत्तर्क |
| ११५ | ३ | नहीं संस्था | नहीं। संस्था |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ११५ | १५ | बचना | वञ्चना |
| १२२ | १० | व्यक्तिके | किसी व्यक्तिके |
| १२२ | १३ | दूर जाना | दूर हो जाना |
| १२३ | २१ | धरी गई । समझिये | धरी गई समझिये । |
| १२५ | ३ | उदासीन रहे | उदासीन रहो |
| १३० | ७ | प्रवृत्तिप रध्यान | प्रवृत्तिपर ध्यान |
| १३१ | ८ | करके आप | करके उन्हें आप |
| १३३ | १३ | मुख्य धर्म साधनका | धर्म साधनका मुख्य |
| १३३ | १३ | आपकी ही | आपकी ही चीज |
| १३४ | ६ | यह मीठा न होता | यह देखा या भोगा न होता |
| १३५ | ७ | गुरुताका | गुरुता या दु खका |
| १३५ | ११ | ग्रहवास | गृहवास |
| १३८ | १८ | पढकर ? आपके | पढकर आपके |
| १३८ | २० | सम्यग्दृष्टि का जीव | सम्यग्दृष्टि जीव |
| १४० | ३ | 'धारणा तो' आदि | मेरी धारणा तो 'नहीं' की ओर जाती है । और |
| १४० | १६ | दु.ख देते हैं । | दु ख देता है । |
| १४३ | २ | प्रभु केज्ञानमें | प्रभुके ज्ञानमें |
| १४३ | २१ | उनसे यह कहना | उनसे भा सब कहना |
| १४६ | १ | भूर्छा | मूर्च्छा |
| १४६ | २० | पाठशालाका चलना | पाठशालाका चलाना |
| १५१ | ५ | अगम्य है | अशक्य है |
| १५३ | ४ | आजतक | आजकल |
| १५५ | १८ | वियोग ज्ञान | वियोग ज्ञानसे |
| १५६ | ३ | किये नोटका | किये गये नोटका |

# श्लोकोंका संशोधन

| पृष्ठ | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|
| ५ | रितिरैत्रमाख्य | रितीदमाख्य |
| ७ | का सक्कइ | को सक्कइ |
| १० | तत्रार्थस्तत्र | तत्रार्थतस्तत्र |
| १० | किञ्चिनापि | किञ्चनापि |
| १५ | 'इतो न किञ्चित्' आदि पूरा श्लोक | इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चिद् यतोयतो यामिततो न किञ्चित्। विचार्यपश्यामि जगन्न किञ्चित् स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित्। |
| २१ | 'रागो दोसो' आदि | रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्ण |
| २४ | 'मा मुज्झई' आदि "द्रव्य संग्रह" की ४८ वी गाथा | मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठ अट्ठेसु। थिरमिच्छहि जइ चित्त विचित्ताझाणप्पसिद्धीए। |
| १४८ | पडिक्कमण | पडिक्कमणं |